

बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल, 1891 परिनिर्वाण 6 दिसंबर, 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 25

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड : 25

ब्रिटिश भारत का संविधान संसदीय प्रक्रिया पर टिप्पणियाँ,
सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना—विविध टिप्पणियाँ

पहला संस्करण : 2019 (जून)
दूसरा संस्करण : 2020 (अगस्त)

ISBN : 978-93-5109-133-2

आवरण परिकल्पना : डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.

पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

ISBN (सेट) : **978-93-5109-129-5**

रियायत के अनुसार सामान्य (पेपरबैक) 1 सेट (खंड 1–40) का मूल्य : रू 1073/-
रियायत नीति (Discount Policy) संलग्न है,

प्रकाशकः
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार
15 जनपथ, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571
जनसंपर्क अधिकारी फोन : 011–23320588
वेबसाइट :http://drambedkarwritings.gov.in
Email-Id :cwbadaf17@gmail.com

मुद्रक : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा.लि., W-30 ओखला, फेज–2, नई दिल्ली–110020

परामर्श सहयोग

डॉ. थावरचन्द गेहलोत

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार

एवं

अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री रामदास अठावले

सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री कृष्णपाल गुर्जर

सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री रतनलाल कटारिया

सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री आर. सुब्रह्मण्यम

सचिव

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार

सुश्री उपमा श्रीवास्तव

अतिरिक्त सचिव एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, पी.एच.डी.

निदेशक

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

डॉ. बृजेश कुमार

संयोजक, सी.डब्ल्यू.बी.ए.

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

सकंलन (अंग्रेजी)

श्री वसंत मून





सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री
भारत सरकार
MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT
GOVERNMENT OF INDIA
तथा
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

संदेश

स्वतंत्र भारत के संविधान के निर्माता डॉ. अम्बेडकर, बहुआयामी प्रतिभा के धनी थे। डॉ. अम्बेडकर एक उत्कृष्ट बुद्धिजीवी, प्रकाण्ड विद्वान, सफल राजनीतिज्ञ, कानूनविद्, अर्थशास्त्री और जनप्रिय नायक थे। वे शोषितों, महिलाओं और गरीबों के मुक्तिदाता थे। डॉ. अम्बेडकर सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष के प्रतीक है। डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी क्षेत्रों में लोकतंत्र की वकालत की। एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण में डॉ. अम्बेडकर का योगदान अतुलनीय है।

डॉ. अम्बेडकर के लेख एवं भाषण क्रांतिकारी वैचारिकता एवं नैतिकता के दर्शन–सूत्र है। भारतीय समाज के साथ–साथ संपूर्ण विश्व में जहां कहीं भी विषमतावादी भेदभाव या छुआछूत मौजूद है, ऐसे समस्त समाज को दमन, शोषण तथा अन्याय से मुक्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर का दृष्टिकोण और जीवन–संघर्ष एक उज्ज्वल पथ प्रशस्त करता है। समतामूलक, स्वतंत्रता की गरिमा से पूर्ण, बंधुता वाले एक समाज के निर्माण के लिए डॉ. अम्बेडकर ने देश की जनता का आह्वान किया था।

डॉ. अम्बेडकर ने शोषितों, श्रमिकों, महिलाओं और युवाओं को जो महत्त्वपूर्ण संदेश दिए, वे एक प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण के लिए अनिवार्य दस्तावेज है। तत्कालीन विभिन्न विषयों पर डॉ. अम्बेडकर का चिंतन–मनन और निष्कर्ष जितना उस समय महत्त्वपूर्ण था, उससे कहीं अधिक आज प्रासंगिक हो गया है। बाबासाहेब की महत्तर मेधा के आलोक में हम अपने जीवन, समाज राष्ट्र और विश्व को प्रगति की राह पर आगे बढ़ा सकते हैं। समता, बंधुता और न्याय पर आधारित डॉ. अम्बेडकर के स्वप्न का समाज–"सबका साथ सबका विकास" की अवधारणा को स्वीकार करके ही प्राप्त किया जा सकता है।

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्न्ता हो रही है, कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, "बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर : संपूर्ण वांग्मय" के अन्य अप्रकाशित खण्ड 22 से 40 तक की पुस्तकों को, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अनुयायियों और देश के आम जन–मानस की मांग को देखते हुए मुद्रत किया जा रहा है।

विद्वान, पाठकगण इन खंडों के बारे में हमें अपने अमूल्य सुझाव से अवगत कराएंगे तो हिंदी में अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

(डॉ. थावरचंद गेहलोत)

बाबासाहेब अम्बेडकर के सम्पूर्ण वाङ्मय (Complete CWBA Vols.) का विमोचन



हिंदी और अंग्रेजी में CWBA / सम्पूर्ण वाङ्मय, (Complete Volumes) बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के संग्रहित कार्यों के संपूर्ण खण्ड, डॉ. थावरचंद गेहलोत, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, और अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा जारी किया गया है। साथ ही डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी, निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान और श्री सुरेन्द्र सिंह, सदस्य सचिव भी इस अवसर पर उपस्थित थे। हिंदी के खंड 22 से खंड 40 तक 2019 में पहली बार प्रकाशित हुए है।

उपमा श्रीवास्तव, आई.ए.एस.
अपर सचिव
UPMA SRIVASTAVA, IAS
Additional Secretary



भारत सरकार
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
शास्त्री भवन, नई दिल्ली-110001
Government of India
Ministry of Social Justice & Empowerment
Shastri Bhawan, New Delhi-110001
Tel. : 011-23383077 Fax : 011-23383956
E-mail : as-sje@nic.in



प्राक्कथन

भारतरत्न डॉ. बी.आर. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के ऐसे पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने जीवनपर्यंत समाज के आख़िरी पायदान पर संघर्षरत् व्यक्तियों की बेहतरी के लिए कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इसलिए उनके लेखों में विषय की दार्शनिक मीमांसा प्रस्फुटित होती है। बाबासाहेब का चिंतन एवं कार्य समाज को बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समृद्धि की ओर ले जाने वाला तो है ही, साथ ही मनुष्य को जागरूक मानवीय गरिमा की आध्यात्मिकता से सुसंस्कृत भी करता है।

बाबासाहेब का संपूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध अनवरत क्रांति की शौर्य–गाथा है। वे एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समता व मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई गुंजाइश न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति कृतसंकल्प बाबासाहेब का लेखन प्रबुद्ध मेधा का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था से डॉ. अम्बेडकर कई बार टकराए। इस टकराहट से डॉ. अम्बेडकर में ऐसा जज़्बा पैदा हुआ, जिसके कारण उन्होंने समतावादी समाज की संरचना को अपने जीवन का मिशन बना लिया।

समतावादी समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता के कारण डॉ. अम्बेडकर ने विभिन्न धर्मों की सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन व तुलनात्मक चिंतन–मनन किया।

मैं प्रतिष्ठान की ओर से माननीय सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार का आभार व्यक्त करती हूँ जिनके सद्परामर्श एवं प्रेरणा से प्रतिष्ठान के कार्यों में अपूर्व प्रगति आई है।

उपमा श्रीवास्तव

(उपमा श्रीवास्तव)
अतिरिक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार, एवं
सदस्य सचिव

प्रस्तावना

बाबासाहेब डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर एक प्रखर व्यक्तित्व, ज्ञान के प्रतीक और भारत के सुपुत्र थे। वह एक सार्वजनिक बौद्धिक, सामाजिक क्रांतिकारी और एक विशाल क्षमता संपन्न विचारक थे। उन्होंने सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों के व्यावहारिक विश्लेषण के साथ–साथ अंतःविषयक दृष्टिकोणों को अपने लेखन और भाषणों के माध्य से प्रभावित किया जो बौद्धिक विषयों और भावनाओं को अभिव्यक्त एवं आंदोलित किया। उनके लेखन में वंचित वर्ग के लोगों के लिए प्रकट न्याय और मुक्ति की गहरी भावना है। उन्होंने न केवल समाज के वंचित वर्गों की स्थितियों को सुधारने के लिए अपना जीवन समर्पित किया, बल्कि समन्वय और 'सामाजिक समरसता' पर उनके विचार राष्ट्रीय प्रयास को प्रेरित करते रहे। उम्मीद है कि ये खंड उनके विचारों को समकालीन प्रासंगिकता प्रदान कर सकते हैं और वर्तमान समय के संदर्भ में डॉ. अम्बेडकर के पुनःपाठ की संभावनाओं को उपस्थित कर सकते हैं।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, भारत के साथ–साथ विदेशों में भी जनता के बीच बाबासाहेब डॉ. अंबेडकर की विचारधारा और संदेश के प्रचार–प्रसार हेतु स्थापित किया गया है। यह बहुत ख़ुशी की बात है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री के नेतृत्व में प्रतिष्ठान के शासी निकाय के एक निर्णय के परिणामस्वरूप, तथा पाठकों की लोकप्रिय माँग पर डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब अम्बेडकर के हिंदी में संपूर्ण वांग्मय (Complete CWBA Volumes) का दूसरा संस्करण पुनर्मुद्रित कर रहा है।

मैं संयोजक, अनुवादकों, पुनरीक्षकों, आदि सभी सहयोगियों, एवं डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान में अपनी सहायक, कुमारी रेनू और लेखापाल, श्री नन्दू शॉ के प्रति आभार प्रकट करता हूँ, जिनकी निष्ठा एवं सतत् प्रयत्न से यह कार्य संपन्न किया जा सका है।

विद्वान एवं पाठकगण इन खंडों के बारे में सुझाव से डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान को उसकी वैधानिक ई–मेल आई.डी. **cwbadaf17@gmail.com** पर अवगत कराएं ताकि, अनुदित इन खंडों के आगामी संस्करणों को और बेहतर बनाने में सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान हमेशा पाठकों को रियायती कीमत पर खंड उपलब्ध कराने के लिए प्रयास करता रहा है, तदनुसार आगामी संस्करण का भी रियायत नीति (Discount Policy) के साथ बिक्री जारी रखने का निर्णय लिया गया है। अतः प्रत्येक खंड के साथ प्रतिष्ठान की छूट नीति को संलग्न कर दिया गया है। आशा है कि ये खंड पाठकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बने रहेंगे।

(डॉ. देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार,

15, जनपथ,
नई दिल्ली

जिस समाज में कुछ वर्गों के लोग जो कुछ चाहें वह सब कुछ कर सकें और बाकी वह सब भी न कर सकें जो उन्हें करना चाहिए, उस समाज के अपने गुण होते होंगे, लेकिन इनमें स्वतंत्रता शामिल नहीं होगी। अगर इंसानों के अनुरूप जीने की सुविधा कुछ लोगों तक ही सीमित है, तब जिस सुविधा को आमतौर पर स्वतंत्रता कहा जाता है, उसे विशेषाधिकार कहना अधिक उचित होगा।

—डॉ. भीमराव अम्बेडकर

विषय सूची

संदेश v

प्राक्कथन vii

प्रस्तावना viii

अस्वीकरण ix

अध्याय—एक

वीज़ा के लिए प्रतीक्षा

एक 2

दो 9

तीन 15

चार 17

पांच 20

छः 22

भाग — छः

विविध टिप्पणियाँ

1. ब्रिटिश भारत का संविधान 28
2. संसदीय प्रक्रिया पर टिप्पणियाँ 31
3. भारत के इतिहास पर टिप्पणियाँ 40
4. मनु और शूद्र 49
5. सामाजिक—व्यवस्था को बनाए रखना 56
6. हिंदुओं के साथ 59
7. कुंठा 61
8. राजनीतिक दमन की समस्या 64
9. अधिक बदतर क्या है—दासता या छुआछुत? 68

रियायत नीति (Discount Policy)

वीज़ा के लिए प्रतीक्षा

यहाँ डॉ. अम्बेडकर द्वारा अपने हाथ से लिखे कुछ संस्मरण दिए जाते हैं। पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी के संग्रह से मिली पांडुलिपियाँ सोसाइटी द्वारा एक पुस्तिका के रूप में 19 मार्च, 1990 को प्रकाशित की गई थी।

सम्पादक

1

वीज़ा के लिए प्रतीक्षा

निस्संदेह विदेशी जानते हैं कि भारत में छुंआछूत की बीमारी है। लेकिन निकट पड़ोसी न होने के कारण वे यह नहीं समझते कि वास्तव में कितने अछूत हैं। उनके लिए यह समझना कठिन है कि बहुत से हिन्दुओं के गांव के किनारे कुछ अछूत कैसे रहते हैं उन्हें कैसे प्रतिदिन गांव की गंदगी साफ करनी पड़ती है। कैसे हिन्दुओं के जाकर दूर से ही खाना लेना पड़ता है और हिन्दू बनियों की दुकानों से मसाले और तेल आदि दूर से ही खरीदने पड़ते हैं। वे गांव को हर प्रकार से अपना घर समझते हैं लेकिन वे किसी गांव वाले को नहीं छू सकते और न ही उन्हें कोई छू सकता है। समस्या यह है कि जिस प्रकार का व्यवहार सवर्ण हिन्दुओं द्वारा अछूतों से किया जाता है उसे अति उत्तम ढंग से कैसे बताया जाए। यह उद्देश्य दो तरीकों से पूरा किया जा सकता है। एक तो यह है कि उनके साथ जो व्यवहार होता है उसका सामान्य ब्यौरा दिया जाए और दूसरा तरीका यह है कि इसके कुछ दृष्टांत दिए जाएं। मेरा विचार है कि दूसरा तरीका अधिक प्रभावशाली होगा। इन उदाहरणों का चयन करते समय मैंने कुछ अपने अनुभव और कुछ दूसरों के अनुभव लिए हैं। मैं उन घटनाओं से आरम्भ करता हूँ जो मेरे जीवन में घटित हुई हैं।

एक

आरम्भ में हमारा परिवार बम्बई प्रेसीडेन्सी के रत्नागिरी जिले के दपोली तालुका में रहता था। ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन आरम्भ होते ही मेरे पूर्वज अपने पैतृक पेशे को छोड़कर कम्पनी की फौज में नौकरी करने लगे। मेरे पिताजी ने भी पारिवारिक परम्परा का पालन किया और सेना में नौकरी करते हुए वे एक अधिकारी के पद पर पहुंचे और सूबेदार के रूप में सेवानिवृत्त हुए। मेरे पिता सेवानिवृत्ति के पश्चात् अपने परिवार को लेकर दपोली पहुंचे जहां वह बसना चाहते थे। लेकिन कुछ कारणों से उन्होंने अपना विचार बदल दिया। हमारा परिवार दपोली से सतारा पहुंचा जहां हम 1904 तक रहे।

पहली घटना जो मुझे याद है और जिसका मैं उल्लेख कर रहा हूँ वह लगभग 1901 में घटी जब हम सतारा में थे। मेरी मां तब मर चुकी थीं। मेरे पिता दूर सतारा जिले के खातव तालुका के कोरेगांव (गोरेगाँव) में खजांची थे जहाँ बम्बई की सरकार ने सूखे से पीड़ित लोगों को, जो भूख के कारण मर रहे थे, रोजगार देने के उद्देश्य से तालाब खोदने का काम आरम्भ कर रखा था। जब मेरे पिता कोरेगाँव गए तो वह मुझे मेरे भाई, जो मुझसे बड़ा था, और मेरी बड़ी बहन जो मर चुकी थीं, के दो बच्चों को मेरी चाची और कुछ दयालु पड़ोसियों की देखरेख में छोड़ गए। मैं जानता हूँ कि मेरी चाची बहुत दयालु थीं लेकिन वह हमारी कोई सहायता नहीं कर सकती थीं वे बौनी थीं और उनकी टाँगों में कुछ खराबी थी जिससे वह बिना किसी की सहायता के चल-फिर नहीं सकती थीं। उन्हें अक्सर उठाना पड़ता था। मेरी बहनें थीं। वे शादीशुदा थीं और अपने परिवार के साथ दूर रहती थीं। अपना खाना बनाना हमारे लिए समस्या बन गया था। खासतौर से इसलिए कि हमारी चाची असहाय होने के कारण यह काम नहीं कर सकती थीं। हम चार बच्चे विद्यालय जाने वाले थे और हम अपना खाना भी स्वयं बनाते थे। हम रोटी नहीं बना सकते थे। इसलिए हम पुलाव पर गुज़ारा करते थे जिसे बनाना हमारे लिए आसान था, क्योंकि उसमें केवल चावल और माँस को ही मिलाना पड़ता था।

खजांची होने के कारण हमारे पिता हमारे पास सतारा आने के लिए अपना कार्यालय नहीं छोड़ सकते थे। अत: उन्होंने हमें कोरेगाँव आने और गर्मी की छुट्टियाँ वहीं उनके साथ बिताने के लिए लिखा। हम बच्चों को इस पर बड़ी उत्सुकता हुई क्योंकि हमने तब तक रेलवे स्टेशन नहीं देखा था।

बड़ी तैयारियाँ की गईं। यात्रा के लिए अंग्रेजनुमा चमकीली सितारों वाली टोपियां, नए जूते, नई रेशमी किनारों की धोती दे दी गई। रास्ते की सम्पूर्ण जानकारी पिताजी ने दे दी थी और उन्होंने हमें यह सूचित करने के लिए लिखा था कि हम किस तरह चलेंगे ताकि वह स्टेशन अपने चपरासी को भेज सकें, जो हमें मिले और कोरेगाँव ले जाए। जैसा कि पिताजी चाहते थे, मैं, मेरा भाई और मेरी बहन का एक लड़का सतारा से चल पड़े और अपनी चाची को पड़ोसियों की देखरेख में छोड़ दिया जिन्होंने उनकी देखभाल करने का वादा किया। हमारे स्थान से स्टेशन 10 मील दूर था और हमें स्टेशन ले जाने के लिए एक ताँगा किराए पर लिया गया। हमने विशेष रूप से इस अवसर के लिए बनाए गए कपड़े पहने हुए थे और खुशी से हमने घर छोड़ा। लेकिन जिस समय हमने घर छोड़ा हमारी चाची दु:खी थीं।

हम स्टेशन पहुँचे तो मेरे भाई ने टिकटें खरीदीं और मुझे तथा मेरी बहन के लड़के को दो-दो आने जेबखर्च के लिए दिए ताकि हम जैसे चाहें उन्हें खर्च कर सकें। हम

तुरन्त उछलने-कूदने लगे और एक तरफ लेमन की बोतल का ऑर्डर दे दिया। थोड़ी देर में सीटी बजाती हुई गाड़ी आ गई और हम पीछे न रह जाएं, इस डर से जल्दी ही गाड़ी में चढ़ गए। हमें मसूर में गाड़ी से उतरने के लिए कहा गया था जो कोरेगांव से सबसे निकट का स्टेशन था।

गाड़ी मसूर में शाम को 5 बजे पहुँची और हम अपने सामान के साथ उतर गए। कुछ ही मिनटों में जो यात्री गाड़ी से उतरे थे अपने-अपने गंतव्य स्थान को चले गए। हम चार बच्चे स्टेशन के प्लेटफॉर्म पर रह गए और अपने पिता या उनके नौकर को, जिसको उन्होंने भेजने का वचन दिया था, देखने लगे। बहुत देर तक हमने प्रतीक्षा की लेकिन वहाँ कोई नहीं आया। एक घंटा बीत गया और स्टेशन मास्टर पूछने के लिए आया। उन्होंने हमसे हमारी टिकटें मांगी हमने अपनी टिकटें उनको दिखा दीं। उन्होंने हमसे पूछा कि हम क्यों रुके हैं। हमने उनसे कहा कि हमें कोरेगाँव जाना था और हम अपने पिताजी या उनके नौकर के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं लेकिन अभी तक कोई नहीं आया है और अब हम कोरेगाँव कैसे पहुँचें। हमने अच्छे कपड़े पहने थे। हमारे कपड़ों और बातचीत से कोई यह नहीं पहचान सकता था कि हम अछूत हैं। स्टेशन मास्टर को विश्वास था कि हम ब्राह्मण बच्चे हैं और वह हमें इस दशा में देखकर द्रवित हुआ। जैसा कि हिन्दुओं में आमतौर पर होता है, स्टेशन मास्टर ने पूछा कि हम कौन हैं। एक भी क्षण सोचे बिना मैंने कहा कि हम महार हैं। महार एक ऐसी जाति है जो बम्बई प्रेसीडेन्सी में अछूत मानी जाती है। उसे अचम्भा हुआ। उसका चेहरा अचानक बदल गया। हम देख रहे थे कि वह दुःखी था। जैसे ही उसने मेरा उत्तर सुना वह अपने कमरे में चला गया और हम वहीं खड़े रहे जहां खड़े थे। पंद्रह-बीस मिनट गुज़रे, सूर्य लगभग छिप रहा था। पिताजी नहीं आए थे और न ही उन्होंने नौकर को भेजा था और अब स्टेशन मास्टर भी हमको छोड़कर चला गया था। हम पूरी तरह परेशान थे। जो खुशी और प्रसन्नता हमने यात्रा आरम्भ करने पर महसूस की थी वह खत्म हो गई थी और अब हम उदास हो गए थे। आधे घंटे के पश्चात् स्टेशन मास्टर लौटा और उसने हमसे पूछा कि हम क्या करना चाहते हैं। हमने कहा कि यदि हमको कोई बैलगाड़ी किराए पर मिल सके तो हम कोरेगाँव चले जाएंगे और यदि यह बहुत दूर नहीं है तो हम तुरंत चलना चाहेंगे। वहां बहुत-सी बैलगाड़ियाँ किराए के लिए खड़ी थीं। लेकिन गाड़ी वालों ने स्टेशन मास्टर को यह बताते हुए सुन लिया था कि हम महार हैं। उनमें से कोई गन्दा होने को तैयार नहीं था और अछूत वर्गों के बच्चों को ले जाकर अपनी प्रतिष्ठा कम नहीं करना चाहता था। हम दोगुना किराया देने को तैयार थे। लेकिन हमने देखा कि पैसा कुछ नहीं करता। स्टेशन मास्टर जो हमारी ओर से सौदा कर रहा था चुपचाप खड़ा देख रहा था कि क्या करे। अचानक एक विचार उसके दिमाग में आया और उसने हमसे पूछा, "तुम गाड़ी चला सकते हो?" यह समझकर कि वह हमारी

कठिनाइयों का हल ढूंढ रहा है, हम बोल उठे “हाँ” हम चला सकते हैं। हमारा उत्तर सुनकर वह चला गया और हमारी ओर से प्रस्ताव किया कि हम गाड़ीवान को दोगुना किराया देंगे और बैलगाड़ी स्वयं चलाएंगे। गाड़ीवान को हमारे साथ केवल पैदल चलना होगा। एक गाड़ीवान तैयार हो गया क्योंकि इस प्रकार उसे किराया भी मिल गया और वह गन्दगी से भी बच गया।

जब हम चलने को तैयार थे तो शाम के करीब 6:30 बजे थे। लेकिन हम स्टेशन छोड़ने के लिए उस समय तक तैयार नहीं थे जब तक यह विश्वास न दिला दिया जाए कि हम कोरेगाँव अंधेरा होने से पूर्व पहुँच जाएंगे। अतः हमने गाड़ीवान से पूछा कि कोरेगाँव यहाँ से कितनी दूर है और वहां पहुंचने में कितना समय लगेगा। उसने हमें विश्वास दिलाया कि कोरेगाँव पहुंचने में तीन घंटे से ज्यादा नहीं लगेंगे। उसके शब्दों पर विश्वास करके, हमने अपना सामान गाड़ी में रख दिया। स्टेशन मास्टर को धन्यवाद दिया और गाड़ी में बैठ गए। हम में से एक ने बैलों की लगाम पकड़ी और गाड़ी चल दी – गाड़ीवान गाड़ी के साथ चल रहा था।

स्टेशन से थोड़ी दूर पर एक नदी बहती थी जो बिल्कुल सूखी थी। कुछ ही स्थानों पर गड्ढे थे जिसमें पानी भरा था। गाड़ी वाले ने प्रस्ताव किया कि हम वहां ठहर कर अपना खाना खा लें क्योंकि फिर कहीं पानी नहीं मिलेगा। हम सहमत हो गए। उसने हमें कुछ किराया देने के लिए कहा जिससे वह गाँव में जाकर कुछ खा सके। मेरे भाई ने कुछ पैसे उसे दिए और शीघ्र लौटने का वायदा करके वह चला गया। हम बहुत भूखे थे और कुछ खाने का अवसर पाकर बहुत प्रसन्न हुए। मेरी चाची ने पड़ोस की औरतों से कुछ अच्छे-अच्छे पकवान रास्ते में खाने के लिए हमारे लिए तैयार करवा लिए थे। हमने टिफिन खोला और खाना आरम्भ किया। हमें बर्तन धोने के लिए पानी की आवश्यकता थी। हममें से एक पास की नदी के गड्ढे से पानी लेने गया लेकिन वह पीने लायक पानी नहीं था। वह कीचड़ और गाय भैंस के पेशाब और गोबर का मिश्रण था, जो वहाँ पानी पीने आते थे। वास्तव में वह पानी मनुष्यों के प्रयोग के लिए नहीं था। पानी की दुर्गंध इतनी अधिक थी कि हम उसे पी नहीं सकते थे। अतः संतुष्ट होने से पूर्व ही हमने अपना खाना बंद कर दिया और गाड़ीवान की प्रतीक्षा करने लगे। वह बहुत दूर तक नहीं आया और हम जो कर सकते वह यह था कि उसे चारों ओर देखते रहे। अन्त में वह आया और हमने यात्रा आरम्भ कर दी। चार-पांच मील तक हमने गाड़ी चलाई और वह पैदल चलता रहा। फिर वह अचानक उछलकर गाड़ी पर बैठ गया और लगाम अपने हाथ में ले ली। हमें गाड़ीवान के इस आचरण पर बड़ा आश्चर्य हुआ। पहले तो उसने गन्दा होने के डर से हमें गाड़ी देने से इन्कार कर दिया था और अब सभी धार्मिक संकोच त्याग कर उसी गाड़ी में हमारे साथ बैठने को तैयार हो गया किन्तु हमने इस बारे में उससे कोई प्रश्न करने की हिम्मत नहीं की। हम जल्दी अपनी मंज़िल गोरेगाँव

पहुँचने के लिए उत्सुक थे। हम चाहते थे कि गाड़ी चलती रहे। लेकिन शीघ्र ही हमारे चारों ओर अंधेरा छा गया। अंधेरे को दूर करने के लिए कोई रोशनी नहीं थी। कोई स्त्री, पुरुष या पशु चलता दिखाई नहीं दिया जिससे हमें महसूस हो कि हम उनके बीच चल रहे हैं। हमें एकांत में डर लगने गला जिसने हमें चारों ओर से घेर लिया था। हमारी चिन्ता बढ़ रही थी। हमने हिम्मत से काम लिया। हम मसूर से बहुत दूर आ चुके थे। कोई तीन घंटे से अधिक यात्रा कर चुके थे। लेकिन गोरेगाँव का कोई संकेत नहीं था। हममें एक विचित्र विचार उत्पन्न हुआ। हमें संदेह होने लगा कि गाड़ीवान विश्वासघात करना चाहता है। वह हमें मारने के इरादे से किसी एकान्त स्थान पर ले जा रहा है। हमारे पास सोने के बहुत से जेवरात थे, जिससे हमारी आशंका को बल मिला। हमने उससे पूछा कि गोरेगाँव कितना दूर है। वहाँ पहुँचने में देर क्यों हो रही है। वह कहता रहा, बहुत दूर नहीं है, हम वहाँ शीघ्र पहुँच जाएंगे। जब रात के लगभग 10 बज गए और हमें गोरेगाँव का कोई निशान दिखाई नहीं दिया तो हम बच्चों ने चिल्लाना और बुरा-भला सुनाना शुरू कर दिया। हमारा रोना-चिल्लाना देर तक चलता रहा। गाड़ीवान ने कोई उत्तर नहीं दिया। अचानक हमने थोड़ी दूरी पर दीपक जलता देखा। गाड़ीवान ने कहा, "क्या तुम्हें वह रोशनी दिख रही है? वह चुंगी कलक्टर की रोशनी है। हम वहाँ रात को आराम करेंगे।" हमने कुछ राहत महसूस की और चिल्लाना बन्द कर दिया। रोशनी दूर थी। हम उस तक कभी पहुंचते दिखाई नहीं दे रहे थे। चुंगी-कलक्टर की कुटीर तक पहुँचने में हमें दो घंटे लगे। समय के अन्तराल में हमारी चिन्ता और बढ़ गई और हम गाड़ीवान से तरह-तरह के प्रश्न पूछते रहे, जैसे कि वहां पहुँचने में देर क्यों हो रही है, क्या हम उसी सड़क पर जा रहे हैं, इत्यादि।

अन्ततः आधी रात गाड़ी चुंगी-कलक्टर की कुटीर पर पहुँची। यह एक पहाड़ी के नीचे लेकिन पहाड़ी की दूसरी ओर स्थित थी। जब हम वहां पहुंचे तो हमने बहुत-सी बैलगाड़ियाँ वहाँ देखीं। ये सब वहाँ रात को आराम करने के लिए रुकी थीं। हमें बहुत भूख लगी थी और हम भोजन करना चाहते थे। लेकिन यहां भी पानी का प्रश्न था। हमने अपने गाड़ीवान से कहा क्या पानी मिल सकता है? उसने हमें चेतावनी दी कि चुंगी-कलक्टर हिन्दू था यदि तुमने सत्य कहा कि हम महार हैं तो यहाँ पानी नहीं मिल सकेगा। उसने कहा, "तुम कहना हम मुसलमान हैं और अपना भाग्य आजमाओ।" उसकी सलाह पर मैं चुंगी-कलक्टर की कुटीर में गया और उससे कहा आप हमें कुछ पानी देंगे। "तुम कौन हो?" उसने पूछा। मैंने उत्तर दिया कि हम मुसलमान हैं। मैंने उससे उर्दू में बातचीत की, जो मैं बहुत अच्छी तरह जानता था, ताकि मेरे मुसलमान होने में कोई संदेह न हो। लेकिन यह चाल कामयाब नहीं हुई और उसने कड़े रुख में उत्तर दिया "तुम्हारे लिए पानी किसने रखा है। पानी ऊपर पहाड़ी पर है यदि तुम चाहो तो जाकर ले आओ, मेरे पास कोई पानी नहीं है।" इस प्रकार उसने मुझे टाल दिया। मैं गाड़ी की

ओर लौट आया और उसका उत्तर भाई को बता दिया। मैं नहीं जानता कि मेरे भाई ने कैसा महसूस किया। उसने हमें सिर्फ सो जाने को कहा।

बैलगाड़ी के जुए से खोल दिए गए थे और गाड़ी ज़मीन पर टेक दी गई थी। हमने अपने बिस्तर गाड़ी में नीचे बने तख्ते पर बिछा दिए और आराम के लिए लेट गए। चूँकि अब हम सुरक्षित स्थान पर पहुँच गए थे, जो कुछ हुआ हमने महसूस नहीं किया। लेकिन हमारा दिमाग नवीनतम घटना की ओर चला ही गया। हमारे पास बहुत खाना था। हमारे अन्दर भूख की अग्नि जल रही थी। यह सब होते हुए भी हमें खाना खाए बिना सोना पड़ रहा था क्योंकि हमें पानी नहीं मिला और पानी इसलिए नहीं मिला कि हम अछूत थे। यह विचार हमारे मन में आया। मैंने कहा, हम सुरक्षित स्थान पर आ गए हैं। मेरे बड़े भाई को कुछ भ्रान्ति हुई। उसने कहा कि हम चारों के लिए सो जाना विवेकपूर्ण नहीं है। कुछ भी हो सकता है। उन्होंने सुझाव दिया कि एक समय में दो को सोना चाहिए और दो को पहरा देना चाहिए। इस प्रकार हमने पहाड़ी के नीचे रात बिताई।

प्रात: 5 बजे हमारा गाड़ीवान आया और सुझाव दिया कि हमें गोरेगाँव के लिए चल देना चाहिए। हम लोगों ने साफ मना कर दिया। हमने उससे कहा कि हम आठ बजे से पहले नहीं चलेंगे। हम कोई खतरा मोल नहीं लेना चाहते थे। उसने कुछ नहीं कहा। इस प्रकार हमने 6 बजे चलना शुरू किया और गोरेगाँव11 बजे पहुंचे। मेरे पिताजी हमें देखकर हैरान हुए और कहा कि उन्हें हमारे आने की सूचना नहीं मिली है। हमने कहा कि सूचना तो दी थी। उन्होंने इस तथ्य से इन्कार कर दिया। बाद में पता लगा कि मेरे पिताजी के नौकर की गलती थी। उसने हमारा पत्र प्राप्त कर लिया था लेकिन पिताजी को नहीं दिया था।

यह घटना मेरे जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। जिस समय घटना हुई मैं नौ वर्ष का बालक था। लेकिन इसने मेरे दिमाग पर अमिट छाप छोड़ी। यह घटना होने से पूर्व मैं जानता था कि मैं एक अछूत हूं और अछूतों को कुछ अपमान और भेदभाव सहन करने पड़ते हैं। उदाहरण के तौर पर मैं जानता था कि मैं अपनी कक्षा के छात्रों के बीच अपने क्रम के अनुसार नहीं बैठ सकता था, अपितु मुझे स्वत: एक कोने में बैठना होता था। मैं जानता था कि स्कूल की सफाई करने के लिए रखा नौकर मेरे उस टाट को नहीं छुएगा जिसका मैं प्रयोग करता हूं। मुझे टाट का टुकड़ा शाम को अपने साथ ले जाना होता था और उसके अगले दिन प्रात: अपने साथ लाना होता था। स्कूल में सवर्णों के बच्चे प्यास लगने पर नल से पानी लेकर प्यास बुझा सकते थे। इसके लिए उन्हें केवल अध्यापक की इजाजत लेनी होती थी। मेरी स्थिति अलग थी। मैं नल को छू नहीं सकता था और जब तक इसे कोई सवर्ण व्यक्ति खोलता नहीं था, मैं अपनी प्यास नहीं बुझा सकता था। मेरे मामले में अध्यापक की अनुमति लेना काफी नहीं था।

स्कूल के चपरासी की उपस्थिति आवश्यक थी क्योंकि वही एक ऐसा आदमी था जिसे कक्षा–अध्यापक इस काम के लिए इस्तेमाल कर सकता था। यदि चपरासी उपलब्ध नहीं होता था, तो मुझे बिना पानी के रहना पड़ता। इस स्थिति को संक्षेप में इस प्रकार बयान किया जा सकता है – चपरासी नहीं तो पानी नहीं। मैं जानता हूँ कि घर में कपड़े धोने का काम मेरी बहनें करती थीं। ऐसी बात नहीं है कि सतारा में कोई धोबी नहीं था। ऐसी बात भी नहीं कि हम धोबी को पैसे नहीं दे सकते थे। मेरी बहनें इसलिए कपड़े धोती थीं कि हम अछूत थे और कोई धोबी किसी अछूत के कपड़े नहीं धोता था। मेरे तथा अन्य लोगों के बाल काटने या हजामत बनाने का काम मेरी बड़ी बहन करती थी जो हामरे बाल काटते–काटते बाल काटने में माहिर हो गई थी। इसका कारण यह नहीं था कि सतारा में कोई नाई नहीं था और न ही इसका यह कारण था कि हम नाई को पैसे नहीं दे सकते थे। हजामत बनाने और बाल काटने का काम मेरी बहन इसलिए करती थी कि हम अछूत थे और कोई नाई अछूत के बाल काटने को तैयार नहीं था। यह सब जानते थे। इस घटना से मुझे इतना अधिक धक्का लगा जितना पहले कभी नहीं लगा था और इससे पहले मैं छुआछूत को अन्य सवर्णों और अछूतों की तरह एक आम बात समझता था। लेकिन इस घटना ने मुझे छुआछूत के बारे में सोचने के लिए बाध्य किया।

दो

1916 में मैं भारत लौटा। मुझे बड़ौदा के माहमहिम महाराजा ने उच्च शिक्षा के लिए अमरीका भेजा था। 1913 से 1917 तक मैंने न्यूयॉर्क के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। 1917 में मैं लन्दन आया और लन्दन विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ इकनॉमिक्स में स्नातकोत्तर विभाग में दाखिला ले लिया। अपनी शिक्षा पूरी किए बिना 1918 में मुझे भारत लौटना पड़ा। चंकि मुझे बड़ौदा राज्य ने शिक्षा दिलाई थी, मैं रियासत की सेवा करने के लिए बाध्य था। तदनुसार, भारत पहुँचने पर मैं सीधा बड़ौदा गया। मैंने बड़ौदा की नौकरी अपने वर्तमान उद्देश्य के लिए किन कारणों से छोड़ी, वे इस मामले से बिल्कुल असंगत हैं। इसलिए उनका उल्लेख नहीं करना चाहता। मेरा सम्बन्ध बड़ौदा में मेरे सामाजिक अनुभवों से है। अत: मैं केवल उनका ही ब्यौरा दूंगा।

यूरोप और अमरीका में मेरे पाँच वर्ष रहने से मेरे मन में ऐसी कोई भावना नहीं रह गई थी कि मैं एक अछूत हूँ और वह कि एक अछूत जब कभी भारत आता है तो वह अपने लिए और दूसरों के लिए एक समस्या बन जाता है। लेकिन जब मैं स्टेशन के बाहर आया तो मेरा दिमाग इस प्रश्न से अत्यन्त क्षुब्ध हुआ "कहाँ जाऊं। कौन मुझे लेगा।" मैं बहुत क्षुब्ध था। हिन्दुओं के होटल थे जिन्हें विशीस कहते थे, मैं जानता था। वे मुझे जगह देंगे नहीं। उनमें जगह लेने का मात्र रास्ता अपने आपको हिन्दू बताना था। लेकिन मैं इसके लिए तैयार नहीं था क्योंकि मैं जानता था कि मेरी असलियत का पता लग गया, जो लगना ही था, तो इसके गम्भीर परिणाम होंगे। बड़ौदा में मेरे मित्र थे, जो अमरीका में पढ़ने के लिए आए हुए थे। "यदि मैं वहां जाऊं तो क्या वे मेरा स्वागत करेंगे?" मैं अपने को आश्वस्त नहीं कर सका। वे अपने घर में एक अछूत को जगह देकर लज्जित महसूस कर सकते हैं। मैं स्टेशन की छत के नीचे कुछ समय खड़ा सोचता रहा, कहाँ जाऊँ, क्या करूँ। तब मेरे दिमाग में यह बात आई कि मैं पूछूं कि शिविर में कोई जगह है। तब तक सभी यात्री जा चुके थे। मैं अकेला रह गया था। कुछ टांगे वाले, जिनको कोई सवारी नहीं मिली थी, मेरी ओर देख रहे थे और मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने उनमें से एक को बुलाया और उससे पूछा कि क्या वह जानता है कि शिविर में कोई होटल है। उसने कहा कि एक पारसी की सराय है और वे पेईंग गैस्ट

रखते हैं। यह सुनकर कि वहाँ एक सराय है जो पारसी चलाते हैं मेरा हृदय प्रफुल्लित हुआ। पारसी ज़ारोष्ट्रियन धर्म को मानते हैं। वहां मुझे इस बात का कोई डर नहीं था कि वे मेरे साथ अछूतों जैसा व्यवहार करेंगे क्योंकि उनका धर्म छुआछूत नहीं मानता। प्रसन्नचित्त और आशा तथा खुले दिमाग से निडर होकर मैंने अपना सामान ताँगे में रखा और ताँगेवाले को शिविर की ओर पारसी सराय में चलने के लिए कहा।

सराय दो मंजिला इमारत थी जिसके भूतल पर एक बूढ़ा पारसी अपने परिवार के साथ रहता था। वह देखभाल करने वाला था और जो लोग वहाँ ठहरने के लिए आते थे उनको भोजन देता था। ताँगा वहाँ पहुँचा तो पारसी रखवाला मुझे ऊपर ले गया। मैं ऊपर चला गया और ताँगेवाला चालक मेरा सामान ऊपर ले गया। मैंने उसे पैसे दिए और वह चला गया। मैं प्रसन्न हुआ कि अन्ततः मैंने अपने ठहरने के लिए जगह ढूँढने की समस्या हल कर ली है। मैं कपड़े उतार रहा था क्योंकि मैं आराम करना चाहता था। इस बीच सराय का रखवाला अपने हाथ में एक किताब लेकर आया। चूँकि मैं अर्धनग्न अवस्था में था उसने देख लिया है कि मैंने सदरा या कास्ती जो पारसी पहनते हैं नहीं पहने हुए था। यह देखते ही उसने तेज आवाज में पूछा कि मैं कौन हूँ? यह जानते हुए कि यह सराय पारसी सम्प्रदाय द्वारा केवल पारसियों के लिए चलाई जा रही है, मैंने उससे कहा कि मैं हिन्दू हूँ। यह जानकर वह स्तब्ध रह गया और कहने लगा कि मैं सराय में नहीं ठहर सकता। उसके व्यवहार से मुझे बड़ा धक्का लगा ओर मैं ठण्डा पड़ गया। मेरे मन में फिर प्रश्न आया कि कहाँ जाऊँ? अपने को सँभालते हुए मैंने उसे बताया कि मैं हिन्दू हूँ मुझे यहाँ ठहरने में कोई आपत्ति नहीं है यदि उसे कोई आपत्ति न हो। उसने उत्तर दिया, "तुम कैसे रह सकते हो। मुझे उन सबका रजिस्टर में नाम लिखना होता है जो यहाँ ठहरते हैं।" मुझे उसकी समस्या समझ में आई। मैंने कहा कि मैं रजिस्टर में लिखने के लिए कोई पारसी नाम रख लेता हूँ। "यदि मुझे कोई एतराज नहीं है तो तुम क्यों एतराज करते हो। तुम्हें कोई हानि नहीं होगी, यदि मैं यहाँ ठहरता हूं, तो तुम्हें कुछ कमाई होगी।" मैं समझ गया कि वह मुझे रखने के लिए तैयार है। स्पष्ट है कि उसके पास काफी समय से कोई पर्यटक नहीं आया था और हव थोड़ा पैसा कमाने का अवसर खोना नहीं चाहता था। वह इस शर्त पर राजी हो गया कि मैं डेढ़ रुपया प्रतिदिन ठहरने के लिए दूँगा और उसके रजिस्टर में अपना कोई पारसी नाम लिखूँगा। वह नीचे चला गया और मैंने चैन की सांस ली। समस्या सुलझ गई थी और मैं प्रसन्न हुआ। लेकिन खेद है कि मेरी वह खुशी ज्यादा देर नहीं चली। लेकिन इससे पहले कि मैं उस समय में अपने निवास के दुःखद अंत का बयान करूँ, मैं यह अवश्य बताऊँगा कि मैं जो थोड़ा समय वहाँ रहा वह मैंने कैसे बिताया।

सराय की पहली मंजिल पर एक छोटा-सा शयन-कक्ष था और इसके साथ एक

छोटा-सा गुसलखाना था जिसमें एक पानी का नल था। इसके अतिरिक्त एक बड़ा कमरा था। जिस समय मैं वहाँ ठहरा हुआ था बड़े हॉल में इस प्रकार के कूड़े-करकट, तख्तों, बेंचों, टूटी कुर्सियों इत्यादि से भरा हुआ था। इसके बीच में मैं अकेला था। प्रातः सराय का रखवाला ऊपर कप में चाय लेकर आया। इसके बाद वह फिर 9:30 बजे मेरा नाश्ता या सवेरे का खाना लेकर आया। तीसरी बार वह रात 8:30 को मेरा खाना लेकर आया। सराय का रखवाला मेरे पास तभी आता था जब बहुत आवश्यक होता था। और वह जब भी आया, मेरे से बात करने के लिए नहीं रुका। किसी प्रकार दिन बीत गया।

बड़ौदा के महाराजा ने मुझे महालेखापाल के कार्यालय में प्रोवेशनर नियुक्त किया था। मैं प्रातः करीब 10 बजे कार्यालय के लिए सराय से जाता था और शाम को देर से आठ बजे लौटता था और अधिक से अधिक समय अपने मित्रों के साथ सराय से बाहर बिताता था। रात बिताने के लिए लौटने का ख़याल मन में आने पर मैं भयभीत हो जाता था और सराय में केवल इसलिए आता था कि मरे पास आराम करने के लिए कोई दूसरा स्थान नहीं था। सराय की पहली मंज़िल पर बड़े कमरे में कोई दूसरा मनुष्य नहीं था जिससे मैं बात कर सकूँ। मैं बिल्कुल अकेला था। पूरे हॉल में अंधेरा रहता था। अंधेरा दूर करने के लिए वहाँ न बिजली की रोशनी थी और न ही कोई दीपक ही था। रखवाला मेरे प्रयोग के लिए एक छोटा-सा लालटेन लेकर आता था। उसकी रोशनी कुछ इंचों से आगे नहीं जा सकती थी। लेकिन मैंने महसूस किया कि मैं काल-कोठरी में हूं और बात करने के लिए किसी व्यक्ति का साथ चाहता था। किन्तु वहाँ कोई नहीं था। किसी व्यक्ति के साथ के अभाव में पुस्तकें मेरी साथी थीं। उनको पढ़ता ही रहता था। पढ़ने में तल्लीन होने के कारण मैं अपना अकेलापन भूल गया। लेकिन चमगादड़ों की चींचीं और उनके उड़ने से, जिन्होंने हॉल को अपना घर बना रखा था, मेरा ध्यान प्रायः भंग हो जाता था और मैं काँपने लगता था और भूलने का प्रयास करने के बावजूद मुझे याद आने लगता था कि मैं विचित्र परिस्थितियों में विचित्र स्थान पर हूँ। कई बार मुझे गुस्सा भी आया लेकिन मैंने अपने दुःख और गुस्से को यह सोचकर दबा लिया कि यद्यपि यह काल कोठरी है, फिर भी सिर छिपाने की जगह है और कोई जगह न होने से कुछ जगह होना बेहतर है। मेरी दशा हृदय-विदारक थी। जब बम्बई से मेरा भान्जा मेरा बचा हुआ सामान लेकर आया, और जब उसने मेरी हालत देखी तो इतना जोर से चिल्लाने लगा कि मुझे उसे तुरंत वापस भेजना पड़ा। मैं इस हालत में पारसी-सराय में पारसी बनकर रहता था। मैं जानता था कि मैं नाम बदलकर बहुत समय तक नहीं रह सकता और एक दिन मेरी पोल खुल जाएगी। इसलिए मैं ठहरने के लिए सरकारी बंगला लेने का प्रयास कर रहा था। लेकिन प्रधानमंत्री ने मेरी अर्जी पर जल्दी गौर नहीं किया, जैसा कि मैं चाहता था। मेरी अर्जी एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी को भेजी गई और इससे पहले कि मुझे अन्तिम उत्तर मिलता, मेरी कयामत का दिन आ गया।

सराय में ठहरने का मेरा ग्यारहवाँ दिन था। मैंने प्रातः का खाना खा लिया था और कपड़े पहन लिए थे और कार्यालय जाने के लिए अपने कमरे से निकलने वाला था। जैसे ही मैं कुछ किताबें पुस्तकालय को लौटाने के लिए उठा रहा था जो मैंने रात को पढ़ने के लिए पुस्तकालय से ली थीं, मुझे ऊपर आते हुए बहुत-से लोगों की पगध्वनि सुनाई दी। मैंने सोचा कि कुछ पर्यटक ठहरने के लिए आए हैं और इसलिए मैं बाहर देख रहा था कि वे कौन हैं, तभी मैंने देखा कि एक दर्जन नाराज दिखाई देने वाले लम्बे तगड़े, जो एक-एक लाठी उठाए हुए थे, मेरे कमरे की ओर आ रहे हैं। मैं समझ गया कि वे साथी पर्यटक नहीं हैं और उन्होंने इसका सबूत तुरन्त दे दिया। वे मेरे कमरे के सामने पंक्ति में खड़े हो गए और प्रश्नों की बौछार शुरू कर दी। "तुम गन्दे हो। तुम यहाँ क्यों आए? तुमने पारसी नाम रखने का साहस कैसे किया? तुम गुण्डे! तुमने पारसी सराय को प्रदूषित किया है। मैं चुपचाप खड़ा रहा, कोई उत्तर नहीं दे सका। मैं यह भी नहीं कह सकता था कि मैं पारसी ही हूं। वास्तव में यह धोखा था और धोखा खुल गया और मुझे विश्वास है कि यदि मैं अपने आपको पारसी बताता रहता, तो कुछ और धर्मान्ध पारसियों की भीड़ ने मेरी पिटाई कर दी होती और संभवतः मार ही दिया होता। मेरी नम्रता और मेरी चुप्पी ने इस दुर्भाग्य को टाल दिया। उनमें से एक ने पूछा कि कमरा कब खाली करने का मेरा इरादा है। उस समय मेरे लिए सिर छिपाने की जगह मेरे लिए मेरे जीवन से अधिक महत्त्वपूर्ण थी। इस प्रश्न में की गई धमकी बहुत बड़ी थी। अतः मैंने अपनी चुप्पी तोड़ी और निवेदन किया कि वे मुझे कम से कम एक सप्ताह और रहने दें क्योंकि मेरा विचार था कि मैंने मंत्री को बंगले के लिए जो अर्जी दी हुई थी उस पर इस बीच में मेरे पक्ष में फैसला हो जाएगा। लेकिन पारसी कुछ भी सुनने को तैयार नहीं थे। उन्होंने अन्तिम निर्णय दे दिया। उन्होंने मुझे शाम तक सराय से चले जाने के लिए कह दिया। उन्होंने गम्भीर परिणामों की धमकी दी और चले गए। मैं असमंजस में था। मेरा हृदय अन्दर ही अन्दर बैठ रहा था। मैंने सबको कोसा और फूट-फूट कर रोया। अन्ततः मुझे उस सिर छिपाने की जगह से, जो मेरे लिए बड़ी कीमती थी, वंचित कर दिया गया। यह एक कैदी की कोठरी से अच्छी जगह नहीं थी। लेकिन यह मेरे लिए बहुत कीमती थी।

पारसियों के चले जाने के बाद मैं कुछ देर तक बेठा कोई रास्ता ढूंढने के बारे में सोचता रहा। मुझे आशा थी कि शीघ्र ही सरकारी बंगला मिल जाएगा और मेरी तकलीफें दूर हो जाएंगी। मेरी समस्या अस्थाई समस्या थी और मैंने सोचा कि दोस्तों के यहां जाना अच्छा होगा। बड़ौदा राज्य के अछूतों में मेरा कोई मित्र नहीं था। लेकिन दूसरे वर्गों में मेरे मित्र थे। एक हिन्दू था, दूसरा एक भारतीय ईसाई था। मैं पहले अपने हिन्दू मित्र के यहां गया और जो कुछ मेरे साथ हुआ सब कह सुनाया। वह अच्छा व्यक्ति था और मेरा व्यक्तिगत मित्र था। वह दुःखी और गुस्से में भी था। फिर भी उसने एक विचार

रखा। उसने कहा, "यदि तुम मेरे घर में आते हो तो मेरे नौकर चले जाएंगे।" मैं इशारा समझ गया ओर मैंने जगह देने के लिए उस पर दबाव नहीं डाला। मैंने भारतीय ईसाई मित्र के पास जाना पसंद नहीं किया। एक बार उसने अपने साथ रहने के लिए आमंत्रित किया था। लेकिन मैंने पारसी सराय में ठहरना अच्छा समझ मना कर दिया था। मेरा कारण यह था कि उसकी आदतें मेरे अनुकूल नहीं थीं अब वहाँ जाने का अर्थ दो-टूक जवाब सुनना था। इसलिए मैं अपने कार्यालय चला गया। लेकिन मैं ठहरने का स्थान पाने का विचार छोड़ नहीं सका। अपने एक मित्र की सलाह पर मैंने उसके पास जाने और उससे पूछने का फैसला किया कि क्या वह मुझे अपने पास जगह देगा। मेरे पूछने पर उसने उत्तर दिया कि कल उसकी पत्नी बड़ौदा आ रही है और वह उससे बात करेगा। बाद में मुझे पता चला कि यह बहुत ही व्यवहार-कुशल उत्तर था। वह और उसकी पत्नी मूल रूप से ऐसे परिवार से थे जो जाति के ब्राह्मण थे और ईसाई बनने के बाद पति के विचार तो उदार हो गए थे लेकिन पत्नी रूढ़िवादी रही और वह एक अछूत को अपने घर में रखने के लिए कभी तैयार न हुई होती। इस प्रकार आशा की अन्तिम किरण भी जाती रही। जब मैं अपने भारतीय ईसाई मित्र के घर से चला तो शाम के 4 बजे थे। मेरे सामने सबसे बड़ा प्रश्न था, कि कहाँ जाऊँ। मुझे सराय अवश्य छोड़नी थी और मेरा ऐसा कोई मित्र नहीं जिसके पास जाता। केवल एक ही रास्ता बचा था कि बम्बई चला जाऊँ।

बम्बई के लिए रेल रात को 9 बजे चलती थी। मुझे पाँच घंटे बिताने थे उनको मैं कहाँ बिताऊँ? क्या मैं सराय में जाऊँ? मैं सराय में जाने के लिए हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था। मुझे डर था कि कहीं पारसी वहाँ आकर मुझ पर हमला न कर दें। मैं अपने मित्र के पास नहीं जाना चाहता था। यद्यपि मेरी दशा दयनीय थी, मैं नहीं चाहता था कि कोई मेरे ऊपर तरस खाए। मैंने कामथी-बाग नामक सार्वजनिक उद्यान में पांच घंटे बिताने का निश्चय किया। यह उद्यान शहर और शिविर से लगा हुआ है। मेंने वहाँ कुछ समय खाली बैठकर बिताया। मैंने कुछ समय, जो कुछ मेरे साथ हुआ, उस पर दु:ख करने में बिताए और कुछ समय मां-बाप के बारे में सोचने में बिता दिए जैसे बच्चे असहाय होने पर करते हैं। मैं शाम के 8 बजे बगीचे के बाहर आया। एक ताँगे में सराय गया। सराय में ऊपर से अपना सामान नीचे ले आया। सराय का रखवाला बाहर आया लेकिन न मैं और न ही वह एक दूसरे से कुछ कह सके। उसने महसूस किया कि वह किसी न किसी प्रकार से उसे परेशानी में डालने के लिए जिम्मेवार था। मैंने उसका पैसा चुकाया। उसने चुपचाप ले लिया और चला गया। मैं बड़ी आशा के साथ बड़ौदा गया था। मैंने कई प्रस्ताव छोड़ दिए थे। वह लड़ाई का समय था। भारतीय शिक्षा-सेवा में कई स्थान रिक्त थे। मैं लन्दन में कई प्रभावशाली व्यक्तियों को जानता था लेकिन मैं किसी को तलाश नहीं पाया। मैंने सोचा कि मेरा पहला कर्त्तव्य बड़ौदा के महाराजा को अपनी

सेवाएं अर्पित करना है जिसने मेरी पढ़ाई का खर्च उठाया था। लेकिन मुझे केवल ग्यारह दिन ठहरने के बाद बड़ौदा छोड़ना पड़ा और बम्बई वापस आना पड़ा।

लाठियों से लैस भीति की तरह मेरे सामने खड़े एक दर्जन पाारसी और उनके सामने दया की भीख मांगते हुए मेरे भयभीत खड़े होने का दृश्य 18 वर्ष की लम्बी अवधि के पश्चात् भी मेरी दृष्टि से विलीन नहीं हुआ है। मुझे अब भी वह दृश्य बड़ी अच्छी तरह याद है और मुझे अब भी जब उसकी याद आती है तो मेरी आँखों में आँसू आ जाते हैं। उस समय मुझे पहली बार मालूम हुआ कि एक व्यक्ति, जो एक हिन्दू के लिए अछूत है, वह एक पारसी के लिए भी अछूत है।

तीन

वर्ष सन् 1929 की बात है। बम्बई सरकार ने अछूतों की शिकायतों की जांच करने के लिए एक समिति नियुक्त की थी। मुझे समिति का सदस्य नियुक्त किया गया था। अन्याय, अत्याचार और क्रूरता के आरोपों की जाँच करने के लिए समिति को सम्पूर्ण बम्बई प्रदेश का दौरा करना था। समिति का विभाजन कर दिया गया। मुझे तथा एक अन्य सदस्य को खानदेश के दो जिले दिए गए। मैं और मेरा साथी अपना काम समाप्त करने के बाद अलग हो गए। वह किसी हिन्दू साधु से मिलने चला गया। मैं रेल से बम्बई चला गया। मैं चालीसगाँव में धुलिया लाइन पर एक गाँव में एक सामाजिक बहिष्कार के मामले की जाँच करने के लिए उतर गया, जहाँ के सवर्णों ने अछूतों के विरुद्ध सामाजिक बहिष्कार की घोषणा कर रखी थी। चालीसगाँव के अछूत स्टेशन पर आए और उन्होंने मुझसे रात को उनके साथ ठहरने का निवेदन किया। मेरी मूल योजना यह थी कि मैं इस सामाजिक बहिष्कार के मामले की जाँच करने के बाद सीधा बम्बई जाऊँगा परन्तु उन्होंने बहुत आग्रह किया। मैं रात को वहाँ ठहरने के लिए राजी हो गया। मैंने गाँव जाने के लिए धुलिया की गाड़ी पकड़ी और वहाँ गया। गाँव की स्थिति के बारे में जानकारी प्राप्त की और अगली गाड़ी से चालीसगाँव लौट आया।

चालीसगाँव के स्टेशन पर अछूत मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। मुझे हार डाले गए। महारवाड़ा अछूतों की बस्ती रेलवे-स्टेशन से कोई दो मील दूर है। और वहाँ पहुँचने के लिए एक नदी पार करनी पड़ती है जिस पर एक पुलिया बनी हुई है। स्टेशन पर कई ताँगे उपलब्ध थे। स्टेशन से महारवाड़ा पैदल भी जा सकते थे। मुझे आशा थी कि मुझे शीघ्र ही महारवाड़ा ले जाया जाएगा। लेकिन उस ओर कोई नहीं जा रहा था और मैं नहीं समझ पाया कि मुझे क्यों इंतजार करवाया जा रहा है। करीब एक घंटे के बाद एक ताँगा प्लेटफॉर्म के पास आकर रुका और मैं उसमें बैठ गया। ताँगे में ताँगेवाला और मैं दो ही व्यक्ति बैठे थे। अन्य लोग रास्ते से पैदल गए। ताँगा 200 कदम भी नहीं चला होगा कि एक मोटरकार से टकरा गया। मुझे आश्चर्य हुआ कि ताँगेवाला, जो किराए पर रोज ताँगा चलाता था, इतना अनुभवहीन कैसे हो सकता है। सिपाही समय पर जोर से न चिल्लाता और कार का ड्राइवर अपनी कार पीछे न हटाता तो गंभीर दुर्घटना हो गई होती।

हम किसी प्रकार नदी की पुलिया तक आए। इस पर कोई रोक नहीं थी जैसे कि पुल पर होती है। पांच-दस फुट की दूरी पर पत्थरों की पंक्ति थी। पत्थरों का रास्ता था। जिस सड़क से हम आ रहे थे नदी की पुलिया उसके समकोण पर थी। सड़क से पुलिया की ओर जाने के लिए तेजी से मुड़ना पड़ता था। पुलिया के बाजू में पहले पत्थर के पास ही थोड़ा घोड़ा सीधा जाने के बजाए मुड़ा और चौंक कर भाग गया। ताँगे का पहिया बाजू के पत्थर से इतनी जोर से टकराया कि मैं उछलकर पुलिया के पत्थर के खड़ंजे पर जा गिरा और घोड़ा तथा ताँगा पुलिया से नदी में जा गिरे। मैं इतनी जोर से गिरा कि बेहोश हो गया। महारवाड़ा नदी के ठीक दूसरे किनारे पर था जो आदमी मुझे सम्मान देने स्टेशन से पैदल आ रहे थे वे मुझसे पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे। मुझे कंधे पर उठाया गया और पुरुषों, महिलाओं और बच्चों के विलाप और चीत्कार के बीच महारवाड़ा लाया गया। इसके परिणामस्वरूप मुझे गंभीर चोटें आईं। मेरी टाँग टूट गई और मैं कई दिनों के लिए पंगु हो गया। मैं नहीं समझ सका यह सब कैसे हुआ। ताँगे पुलिया से हर रोज आते जाते हैं और ऐसा कभी नहीं हुआ कि ताँगेवाला ताँगे को पुलिया से सुरक्षित लेकर न निकला हो।

पूछताछ करने पर सही तथ्य मेरे सामने लाए गए। स्टेशन में देर होने का कारण यह था कि ताँगेवाले किसी अछूत को लाने के लिए तैयार नहीं थे। यह उनकी शान के खिलाफ था। महारों को यह सहन नहीं था कि मैं पैदल चल कर उनकी बस्ती पहुँचूं। उन्होंने सोचा कि यह मेरे लिए गरिमामय नहीं होगा। इसलिए एक समझौता हुआ। समझौता यह हुआ कि तांगे का मालिक ताँगा किराए पर देगा किंतु चलाएगा नहीं, महार ताँगा ले सकते हैं लेकिन चलाने का इंतज़ाम खुद करेंगे। महारों ने इसे सही समाधान समझा। लेकिन वे यह भूल गए कि यात्री की सुरक्षा उसके प्रति आदर दिखाने से ज्यादा जरूरी है। यदि उन्होंने ऐसा सोचा होता तो वे मुझे गंतव्य स्थान पर सुरक्षित ले जाने के लिए ताँगेवाले का प्रबंध करने की बात पर विचार करते। तथ्य यह है कि महारों में से कोई भी ताँगा चलाना नहीं जानता था क्योंकि वह उनका पेशा नहीं था। इसलिए उन्होंने अपने लोगों के बीच में से ही किसी को ताँगा चलाने को कहा। उस व्यक्ति ने लगाम अपने हाथ में ली और यह सोचने लगा कि इसमें क्या कठिनाई है। लेकिन जेसे ही वह चला, उसने अपनी जिम्मेदारी महसूस की और इतना आतंकित हुआ कि उसने घोड़े को काबू में करने का प्रयास छोड़ दिया। मेरी मान-मर्यादा को बचाने के लिए चालीसगाँव के महारों ने मेरी ज़िंदगी को ही जोखिम में डाल दिया। तब मेरी समझ में आया कि एक हिन्दू ताँगेवाला, जो एक नौकर से बेहतर नहीं है, इतनी शान रखता है कि वह अपने आप को एक अछूत बैरिस्टर से भी ऊँचा समझता है।

चार

वर्ष 1934 में पददलित वर्गों के आंदोलन में मेरे कुछ सहयोगियों ने सैर-सपाटे पर जाने की इच्छा व्यक्त की। वे चाहते थे कि मैं भी साथ चलूँ। मैं सहमत हो गया। यह फैसला हुआ कि हमारा कार्यक्रम जो भी बने उसमें वैरूल की बौद्ध-गुफाओं की यात्रा जरूर शामिल हो। यह निश्चय हुआ कि मैं नासिक जाऊँ और अन्य सभी लोग मुझे वहाँ मिलें। वैरूल जाने के लिए हमें औरंगाबाद जाना था। औरंगाबाद, मुसलमान रियासत हैदराबाद में है और यह निजाम की रियासत में सम्मिलित है। औरंगाबाद जाने के लिए हमें पहले एक और कस्बे दौलताबाद से गुजरना था जो हैदराबाद रियासत में है। दौलताबाद ऐतिहासिक स्थान है और कभी प्रसिद्ध हिन्दू राजा रामदेव राय की राजधानी था। दौलताबाद का किला प्राचीनकालीन ऐतिहासिक स्मारक है और कोई भी यात्री जो उधर जाता है उसे यह जगह जरूर देखनी चाहिए। हमने भी अपने कार्यक्रम में दौलताबाद की यात्रा शामिल कर ली थी।

हमने कुछ बसें और पर्यटक कारें किराए पर लीं। हम लगभग 30 व्यक्ति थे। हमने नासिक से यओला की यात्रा आरम्भ की। चूँकि यओला औरंगाबाद के रास्ते में है हमने अपने भ्रमण कार्यक्रम की घोषणा जानबूझ कर नहीं की थी। हम गुप्त रूप से यात्रा करना चाहते थे ताकि अछूत पर्यटकों को देश के दूरस्थ भागों में जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है हमें उन कठिनाइयों का सामना न करना पड़े। हमने उन स्थानों पर अपने लोगों को सूचना दे दी थी जहाँ हमें रुकना था। तदनुसार, यद्यपि हम निजाम रियासत के बहुत से गाँवों से गुजरे, हमारा कोई आदमी हमसे मिलने नहीं आया। लेकिन दौलताबाद की बात दूसरी थी। हमने वहाँ अपने लोगों को आने की सूचना दे दी थी, वे लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे और शहर के प्रवेश मार्ग पर एकत्र हो गए थे। उन्होंने हमसे कहा कि हम पहले रुक कर चाय-नाश्ता लें और उसके बाद किला देखने जाएं। हम उनके प्रस्ताव से सहमत नहीं हुए। हमें चाय की तीव्र इच्छा हो रही थी लेकिन संध्या होने से पूर्व हम काफी समय चाहते थे ताकि किला देख सकें। अत: हम किला देखने के लिए चले गए और अपने लोगों से कहा कि हम लौटने पर चाय लेंगे। हमने अपने ड्राइवर से आगे चलने को कहा और कुछ ही क्षणों में हम किले के द्वार पर पहुँच गए।

रमजान का महीना था, मुसलमान इस माह रोजा रखते हैं। किले के फाटक के बिल्कुल पास एक छोटा-सा तालाब है जो लबालब भरा रहता है। उसके चारों ओर चौड़े पत्थर का खड़ंजा है। यात्रा के दौरान हमारे चेहरे, शरीर और कपड़े धूल में सन गए थे और हम सभी नहाना चाहते थे। बिना सोचे समझे कुछ लोगों ने तालाब से पानी लेकर खड़ंजों पर मुंह और हाथ-पैर धो लिए। इसके पश्चात् हम किले के द्वार पर गए। किले के अंदर सशस्त्र सिपाही थे उन्होंने बड़ा दरवाजा खोला और हमें अंदर कर लिया। हमने संतरी से यह पूछना आरम्भ किया कि किले के अंदर जाने के लिए इजाजत लेने का क्या तरीका है। उसी समय एक सफेद दाढ़ी वाला मुसलमान पीछे से चिल्लाता हुआ आया। "ढेढो! (अर्थात् अछूतों) ने तालाब अपवित्र कर दिया है। तुरंत ही किले के आसपास के सभी जवान और बूढ़े मुसलमान वहाँ आ गए और सभी ने हमें बुरा-भला कहना आरम्भ कर दिया। ढेढ़ों को अहंकार हो गया। ढेढ अपना धर्म भूल गए हैं (जैसे निम्न और स्तरहीन बने रहने)। ढेढ़ों को एक पाठ पढ़ाया जाए।" वे बड़े उग्र हो गए। हमने उनसे कहा कि हम बाहर से आए हैं और स्थानीय रीति-रिवाज नहीं जानते हैं। वे स्थानीय अछतों पर भी बिगड़ने लगे जो तब तक फाटक तक आ गए थे। "तुमने इन बाहर के लोगों को क्यों नहीं बताया कि अछूत इस तालाब का इस्तेमाल नहीं कर सकते!" वे यह प्रश्न उन बेचारों से पूछते रहे जबकि जब हम तालाब में घुसे वे वहां नहीं थे। वास्तव में यह हमारी भूल थी कि हम बिना पूछे उसमें घुस गए। वे कहने लगे कि वह उनकी गलती नहीं है। लेकिन मुसलमान मेरी बात सुनने के लिए तैयार ही नहीं थे। वे हमको और उनको भली-बुरी सुनाते रहे। उनकी बातें इतनी गन्दी थीं कि हमें उन पर क्रोध भी आ गया। हमें अपने ऊपर काबू रखना पड़ा नहीं तो बड़ी आसानी से उपद्रव हो सकता था और हत्याएं भी हो सकती थीं। हम नहीं चाहते थे कि कोई फौजदारी मामला बने और हमें अपना दौरा एकदम समाप्त करना पड़े।

भीड़ में से एक नवजवान मुसलमान यह कह रहा था कि हरेक को अपने धर्म के अनुसार चलना चाहिए, अर्थात् अछूतों को सार्वजनिक तालाब से पानी नहीं लेना चाहिए। मैं कुछ अधीर हो गया और उससे कुछ गुस्से में पूछा, "क्या तुम्हारा धर्म यही सिखाता है? यदि कोई अछूत मुसलमान बन जाए तो क्या तुम उसे इस तालाब से पानी लेने से रोकोगे? इन सीधे प्रश्नों से मुसलमानों पर कुछ प्रभाव पड़ा। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया और चुपचाप खड़े रहे। सन्तरी की ओर घूरकर मैंने दोबारा गुस्से में कहा, "क्या हम किले के अन्दर जा सकते हैं या नहीं? हमें बताएं, यदि हम नहीं जा सकते तो हम यहाँ नहीं रुकना चाहते।" सन्तरी ने मेरा नाम पूछा। मैंने एक कागज पर लिख दिया। वह उसे अन्दर अधीक्षक के पास ले गया और बाहर आया। हमें बताया गया कि हम किले के अन्दर जा सकते हैं। किन्तु हम कहीं भी किले के अन्दर पानी को हाथ नहीं

लगा सकते। एक सशस्त्र सिपाही को हमारे साथ यह सुनिश्चित करने के लिए जाने के आदेश दिए गए कि हम आदेश का उल्लंघन न करें।

मैंने यह उदाहरण यह दिखाने के लिए दिया था कि एक व्यक्ति जो हिन्दू के लिए अछूत है वह एक पारसी के लिए भी अछूत है। इस घटना से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक व्यक्ति जो हिन्दुओं के लिए अछूत है वह एक मुसलमान के लिए भी अछूत है।

पांच

अगला मामला भी छुआछूत की बीमारी पर इसी प्रकार प्रकाश डालता है। यह काटियावाड के एक गाँव के एक अछूत स्कूल अध्यापक का मामला है जिसका विवरण निम्नलिखित पत्र में दिया गया है जो श्री गाँधी द्वारा प्रकाशित पत्रिका "यंग इंडिया" के दिनांक 12 सितम्बर, 1929 के संस्करण में प्रकाशित हुआ था। इसमें यह बताया गया है कि उसे एक हिन्दू डॉक्टर को उसकी पत्नी को, जिसने एक बच्चे को जन्म दिया था, देखने के लिए राजी करने में क्या कठिनाइयाँ हुईं और चिकित्सा के अभाव में कैसे उसकी पत्नी और बच्चे की मृत्यु हो गई। पत्र में कहा गया है: "इस माह की पाँच तारीख को मेरे एक बच्चा पैदा हुआ। सात तारीख को वह बीमार हो गया और उसे दस्त लग गए। उसकी शक्ति क्षीण हो गई और उसकी छाती लाल हो गई। उसके लिए साँस लेना कठिन हो गया और उसकी पसलियों में जोर से दर्द हो रहा था। मैं एक डॉक्टर को बुलाने गया लेकिन उसने कहा कि वह एक हरिजन के घर नहीं जाएगा और न ही वह बच्चे को देखने के लिए तैयार था। तब मैं नगरसेठ और गरसिया दरबार के पास गया और उनसे सहायता करने के लिए कहा। नगरसेठ ने डॉक्टर को जमानत दी कि उसकी फीस के दो रुपए मैंने नहीं दिए तो वह देगा। तब डॉक्टर आया लेकिन इस शर्त पर कि वह हरिजन बस्ती के बाहर उसकी जाँच करेगा। मैं अपनी पत्नी और उसके नवजात बच्चे को बस्ती से बाहर ले गया। डॉक्टर ने अपना थर्मामीटर एक मुसलमान को दिया उसने मुझे दिया, मैंने उसे अपनी पत्नी को दिया और लगाने के बाद उसे उसी तरीके से लौटाया गया। उस समय करीब शाम के आठ बजे का समय था और डॉक्टर ने एक लैम्प की रोशनी से थर्मामीटर देखकर कहा कि मरीज को निमोनिया हो रहा है। उसके बाद डॉक्टर चला गया और दवा भेज दी। मैं बाजार से कुछ अलसी के बीज लाया और उनका मरीज पर प्रयोग किया बाद में डॉक्टर ने उसे देखने से मना कर दिया जबकि मैंने फीस के दो रुपए दे दिए थे। बीमारी खतरनाक है और भगवान ही हमारी मदद करेगा।

मेरे जीवन का दीपक बुझ गया है। आज दोपहर करीब 2 बजे उसकी मृत्यु हो गई।"

स्कूल के अछूत अध्यापक का नाम नहीं दिया गया। डॉक्टर का नाम भी नहीं दिया गया है। ऐसा अछूत अध्यापक के अनुरोध पर किया गया है जिसे प्रतिशोध का डर था। यह तथ्य अविवाद्य हैं।

किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है कि डॉक्टर ने पढ़े-लिखे होने के बावजूद थर्मामीटर लगाने और गम्भीर दशा में एक बीमार स्त्री का उपचार करने से मना कर दिया। डॉक्टर के उसका उपचार करने से मना करने के कारण उसकी मृत्यु हो गई। डॉक्टर के पेशे पर लागू आचरण-संहिता को एक तरफ रखने पर भी उसकी आत्मा ने उसे नहीं कचोटा। हिन्दू एक अछूत को छूने के बजाए अमानुषिक बनना अधिक पसन्द करेगा।

छः

एक और घटना इससे अधिक प्रभावशाली हैं 6 मार्च, 1938 को भंगियों की एक सभा केसरवाड़ी (वूलम मिल के पीछे) दादर, बम्बई में भी इंदुलाल यादनीक की अध्यक्षता में हुई थी। इस सभा में एक भंगी लड़के ने अपना अनुभव निम्नलिखित शब्दों में बयान किया:

"मैंने 1933 में वर्नाक्यूलर अन्तिम परीक्षा उत्तीर्ण की। मैंने चतुर्थ श्रेणी तक अंग्रेजी पढ़ी है। मैंने बम्बई नगरपालिका की विद्यालय समिति को अध्यापक के पद के लिए अर्जी दी लेकिन मैं असफल रहा क्योंकि वहाँ कोई स्थान खाली नहीं था। उसके बाद, मैंने अहमदाबाद के पिछड़ा वर्ग अधिकारी को तलाती गांव (पटवारी) के पद के लिए अर्जी दी और मुझे सफलता मिल गई। 19 फरवरी, 1936 को मेरी नियुक्ति तलाती के पद पर खेड़ा जिला के बोरसाद तालुका में मामलातदार के कार्यालय में हुई।

यद्यपि मेरा परिवार आरम्भ में गुजरात में रहता था, इससे पहले मैं कभी गुजरात नहीं गया था। यह पहला अवसर था जबकि मैं वहाँ गया। मैं नहीं जानता था कि सरकारी कार्यालयों में भी छुआछूत होगी। इसके अलावा मैंने अपने आवेदन-पत्र में स्पष्ट रूप से लिखा था कि मैं हरिजन हूँ। इसलिए मुझे आशा थी कि कार्यालय के मेरे साथियों को पहले से ही मालूम होगा कि मैं कौन हूँ। ऐसी स्थिति में जब मैं तलाती के पद का कार्यभार संभालने के लिए उपस्थित हुआ तो मुझे मामलातदार-कार्यालय के क्लर्क के व्यवहार पर बड़ा आश्चर्य हुआ।

कार्कून ने तिरस्कारपूर्ण ढंग से पूछा, "तुम कौन हो?" मैंने उत्तर दिया, "महोदय मैं एक हरिजन हूँ।" उन्होंने कहा, "पीछे हटो और फासले पर खड़े हो। तुमने मेरे इतने पास खड़े होने की हिम्मत कैसे की। तुम कार्यालय में हो, यदि बाहर होते तो मैं तुम्हें छह लात मारता, तुमने यहाँ नौकरी में आने का साहस कैसे किया?" उसके पश्चात् उसने मुझे अपना प्रमाण-पत्र और तलाती के रूप में नियुक्ति का आदेश जमीन पर डालने को कहा। फिर उसने उनको उठा लिया। जब मैं बोरसाद के मामलातदार कार्यालय में नौकरी कर रहा था तो मैंने पाया कि मुझे पीने का पानी लेने में काफी कठिनाई होती थी। कार्यालय के बरामदे में पीने के पानी के कुछ डिब्बे रखे हुए थे। पानी के इन

डिब्बों को एक आदमी के हवाले किया गया था जिसका काम आवश्यकता पड़ने पर कार्यालय के क्लर्कों को पानी देना होता था। उसकी अनुपस्थिति में वे स्वयं भी पानी ले सकते थे और पानी पी सकते थे। मेरे मामले में यह असंभव था। मैं डिब्बों को छू नहीं सकता था क्योंकि मेरे छूने से पानी अपवित्र हो जाता। अतः मैं उस आदमी की दया पर निर्भर रहता था। मेरे प्रयोग के लिए एक जंग लगा छोटा-सा बर्तन रख दिया गया था। कोई उसे छूता नहीं था या कोई मेरे लिए उसे धोता नहीं था। लेकिन इस बर्तन में ही वह आदमी मेरे लिए पानी गिराता था। मैं पानी तभी ले सकता था जब वह आदमी हाजिर होता था। यह पानी वाला मुझे पानी देना पसन्द नहीं करता था। यह देखकर कि मैं पानी पीने आ रहा हूँ तो वह खिसक जाया करता था जिसके कारण मुझे पानी नहीं मिल पाता था। जिन दिनों मुझे पानी नहीं मिलता था वे कम नहीं थे।

मुझे आवास के मामले में भी इसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पड़ा। मैं बोरसाद में अजनबी था। कोई सवर्ण हिन्दू मुझे मकान देना नहीं चाहता था। हिन्दुओं के नाराज होने के डर के कारण बोरसाद का कोई अछूत मुझे ठहराने के लिए तैयार नहीं था क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि मैं वहां क्लर्क रहूं क्योंकि यह एक ऊंचा पद था। भोजन के मामले में तो और ज्यादा कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। ऐसा कोई स्थान या व्यक्ति नहीं था जिससे मैं अपना खाना ले सकता। मैं सुबह व शाम भाज़ा खरीदता था, गाँव के बाहर एकान्त में उन्हें खाता था और मामलातदार-कार्यालय के बरामदे के खड़ंजों पर सो जाता था। इस प्रकार मैंने 4 दिन गुजारे। यह सब मेरे लिए असह्य हो गया। उसके बाद मैं जैंट्राल पर रहने गया जो मेरे पूर्वजों का गाँव था। ऐसा मैंने डेढ़ माह तक किया।

इसके पश्चात् मामलातदार ने मुझे काम सीखने के लिए एक तालाती के पास भेजा। यह तालाती तीन गाँवों जैंट्राल, खानपुर और सेजपुर का इंचार्ज था। जैंट्राल इनका हेडक्वार्टर था। मैं दो माह तक इस तालाती के साथ जैंट्राल में रहा। उसने मुझे कुछ नहीं सिखाया और मैं एक बार भी गाँव के कार्यालय में नहीं गया। खासतौर से गाँव का मुखिया नाराज था। एक बार उसने कहा था "अरे तुम्हारा पिता, तुम्हारा भाई भंगी है जो गाँव के कार्यालय को साफ करतं हैं और तुम कार्यालय में हमारे बराबर बैठना चाहते हो। देखो, बेहतर यही है कि तुम काम छोड़ दो।"

एक दिन तालाती ने मुझे गाँव की जनसंख्या-सारणी तैयार करने सेजपुर बुलाया। जैंट्राल से मैं सेजपुर गया। मैंने देखा कि गाँव का मुखिया तथा तालाती गाँव के कार्यालय में कुछ काम कर रहे थे। मैं वहाँ गया और कार्यालय के दरवाजे के पास खड़ा हो गया और उनको नमस्कार किया लेकिन उन्होंने मेरी ओर कोई ध्यान नहीं दिया। मैं वहाँ करीब 15 मिनट तक खड़ा रहा। मैं जीवन से पहले ही ऊब चुका था और इस प्रकार

उपेक्षित तथा अपमानित होने पर मुझे गुस्सा आ गया। मैं वहाँ पड़ी एक कुर्सी पर बैठ गया। मुझे कुर्सी पर बैठा देखकर गाँव का मुखिया और तलाती मुझसे कुछ कहे बिना वहाँ से चले गए। थोड़ी देर के पश्चात् लोग आने लगे और जल्दी ही मेरे आसपास भीड़ लग गई थी। भीड़ का नेतृत्व गाँव की लाइब्रेरी का पुस्तकालयाध्यक्ष कर रहा था। मैं समझ नहीं सका कि एक पढ़ा-लिखा आदमी यह भीड़ क्यों लाया। बाद में मुझे पता चला कि कुर्सी इसकी थी। उसने मुझे बुरी तरह गाली देना शुरू किया। रावनिया (गांव का नौकर) को संबोधित करते हएु उसने कहा, "भंगी के इस गन्दे कुत्ते को कुर्सी पर बैठने की इजाजत किसने दी?" रावनिया ने मुझे उठा दिया और मुझसे कुर्सी छीन कर दूर ले गया। मैं जमीन पर ही बैठ गया। कुछ देर बाद भीड़ ने गांव कार्यालय में मुझे घेर लिया। क्रोधोन्मत इस भीड़ में से कुछ ने मुझे भला-बुरा कहा, कुछ ने मुझे धारिया (तेज धारदार तलवार जैसे अस्त्र) से टुकड़े-टुकड़े कर देने की धमकी दी। मैंने उनसे मुझे माफ करने और मुझ पर दया करने की याचना की। इसका भीड़ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मैं नहीं समझ रहा था कि किस प्रकार अपने आपको बचाऊं। लेकिन मेरे दिमाग में यह बात आई कि जो कुछ मेरे साथ हुआ है उसके बारे में मामलातदार को लिखूं और यह भी लिखूं कि यदि भीड़ मुझे मार देती है तो किस प्रकार मेरा संस्कार किया जाए। संयोगवश मुझे विचार आया कि यदि भीड़ को पता चल गया कि वास्तव में उनके विरुद्ध मामलातदार को सूचना दे रहा हूं तो शायद वे अपने हाथ रोक लें। मैंने रवनिया से कहा कि वह मुझे एक कागज का टुकड़ा दे जो वह दे सकता था जिस पर मैं अपने पेन से मोटे अक्षरों में निम्नलिखित लिखा सकूं ताकि सभी लोग इसे पढ़ सके।

"सेवा में,

मामलातदार, बोरसाद तालुका,

महोदय,

कृपया परमार कालीदास शिवराम का विनम्र नमस्कार स्वीकार करें। आपको नम्रतापूर्वक सूचित किया जाता है कि आज मेरे ऊपर मौत मंडरा रही है। मैं अपने मां-बाप की बातों की ओर ध्यान देता तो आज ऐसी स्थिति न होती। आप मेरे माता-पिता को मेरी मृत्यु की सूचना देने की कृपा करें।"

मैंने जो कुछ लिखा था पुस्तकालयाध्यक्ष ने उसे पढ़ा और मुझे तुरन्त उसे फाड़ने के लिए कहा। मैंने ऐसा ही किया। उन्होंने मुझ पर असंख्य गालियों की बौछार कर मेरा बड़ा अपमान किया। तुम चाहते हो कि हम तुम्हें अपना तालाती कहकर पुकारें? 'तुम एक भंगी हो और तुम कार्यालय में आकर कुर्सी पर बैठना चाहते हो?' मैंने दया की

भीख माँगी और दुबारा ऐसा न करने का वायदा किया और नौकरी छोड़ने का भी वायदा किया। मुझे शाम सात बजे तक वहाँ रखा गया जब तक कि भीड़ तितर–बितर नहीं हो गई। तब तक मुखिया और तालाती नहीं आए थे। उसके पश्चात् मैंने 15 दिन की छुट्टी ली और अपने माँ–बाप के पास बम्बई लौट आया।”

भाग – छः

विविध टिप्पणियां

विविध टिप्पणियाँ

1. ब्रिटिश भारत का संविधान
2. संसदीय प्रक्रिया पर टिप्पणियाँ
3. भारत के इतिहास पर टिप्पणियाँ
4. मनु और शूद्र
5. सामाजिक-व्यवस्था को बनाए रखना
6. हिंदुओं के साथ
7. निराशा
8. राजनैतिक दमन की समस्या
9. अधिक बदतर क्या है - दासता या छुआछात?

ब्रिटिश भारत का संविधान

1. परिचायक : विषय की सीमाएं

ब्रिटिश भारत का संविधान भारत सरकार अधिनियम 1919 नामक अधिनियम में अन्तर्विष्ट है। अत: भारत के संविधान के एक छात्र को अंग्रेजी संविधान के छात्र की तरह खोज नहीं करनी है। उसकी स्थिति अमरीकी संविधान के छात्र की स्थिति से मिलती जुलती है, जिसकी समस्या संयुक्त राज्यों के संविधान को अन्तर्विष्ट करने वाले संविधान को समझना और उसका अर्थ लगाना है। इस दृष्टि से यह प्रश्न उठाना अनावश्यक प्रतीत होता है कि संवैधानिक-विधि क्या है और सामान्यतया कौन से प्रश्न इसकी परिधि में आते हैं। दूसरे, यह मानते हुए कि संवैधानिक-विधि की सीमा में परिभाषित करना आवश्यक है, प्रश्न यह है कि क्या ऐसा प्रश्न इस विषय पर चर्चा से पहले पूछा जाए या चर्चा के अन्त में पूछा जाए। स्वर्गीय प्रोफेसर मेटलैंड ने अंग्रेजी संविधान के अध्यक्ष में बाद का तरीका अपनाया और इस तरीके के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। तथापि, किन्हीं कारणों से यह तरीका भारतीय संविधान का अध्ययन करने के लिए उपयुक्त नहीं होगा।

संवैधानिक-विधि क्या है यह प्रश्न प्रारम्भ में ही इसलिए उठाया जाना चाहिए कि इससे हमें यह स्पष्ट हो जाएगा कि हमारे विषय की सीमाएं क्या हैं और एक या दो उदाहरणों से ही यह स्पष्ट हो जाएगा कि उसके अन्तर्गत कौन से प्रसंग आते हैं। भारत सरकार अधिनिमय में हेवियस कार्पस रिट या मेन्डेमस रिट या सरशियोरारी रिट के बारे में कुछ नहीं कहा गया है। इसमें फौजी कानून या प्रशासकीय कानून के बारे में कोई उल्लेख नहीं है। इसमें परमसत्ता के अधिकार के बारे में भी नहीं कहा गया है जिसका प्रयोग सरकार निस्संदेह भारतीय रियासतों के साथ व्यवहार में करती है। इन प्रश्नों का अध्ययन करना आवश्यक है या नहीं है? क्या भारत की संवैधानिक विधि के अध्ययन के लिए इन विषयों का अध्ययन समीचीन है या नहीं? अन्य देशों में प्राधिकारियों द्वारा जिन्होंने इन देशों की संवैधानिक विधियों का अध्ययन किया है, इन विषयों को जिस प्रकार निपटाया गया है, उनके आधार पर इसमें कोई संदेह नहीं कि सभी इस बात से सहमत हैं कि ये सभी मामले संवैधानिक-विधि के क्षेत्राधिकार में आते हैं। अत:, यदि

इन विषयों का भारत सरकार अधिनियम में कोई उल्लेख नहीं है तो इस विषय की परिभाषा का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

संवैधानिक-विधि क्या है, इस प्रश्न के उत्तर विभिन्न व्यक्तियों ने अलग-अलग दिए हैं। आस्टीन और मैटलैंड दो विभिन्न विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करतें हैं। ऑस्टिन ने लोक-विधि (पब्लिक लॉ) अर्थात् राजनैतिक स्थिति-विधि को दो भागों में विभाजित किया है जिनमें से एक है संवैधानिक-विधि और दूसरा प्रशासनिक-विधि। उनके अनुसार, संवैधानिक-विधि उन व्यक्तियों या व्यक्तियों के वर्गों की अवधारणा करती है जिनके पास राज्य की परमसत्ता होगी। उन्होंने बताया है कि ये लोग किस तरीके से सत्ता के भागीदार होंगे। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि ऑस्टिन की परिभाषा के अनुसार संवैधानिक-विधि में केवल वे नियम आते हैं जो परमसत्ता के संगठन और रचना की अवधारणा करते हैं। उनके अनुसार, संवैधानिक-विधि में वे सभी नियम नहीं आते हैं जो प्रभुसत्तात्मक संगठन की प्रभुसत्ता से सम्बन्धित हैं। जबकि ऑस्टिन ने संवैधनिक-विधि की परिभाषा को अपने सिद्धान्तों के तर्क पर निर्भर बना दिया है, मेंटलैंड ने संवैधानिक-विधि की भी सीमाओं को विवेक का विषय बना दिया है। मेंटलैंड के अनुसार, संवैधानिक-विधि में न केवल परमसत्ता की रचना के नियम सम्मिलित हैं, अपितु इसमें सर्वोच्च न्यायालय, राज्य के विभाग, राज्य के सचिव, न्यायाधीश, शान्ति-सम्बन्धी न्याय निर्धन विधि संरक्षक, स्वास्थ्य बोर्ड और पुलिस भी आते हैं। ये विचार दो परम सीमाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं और यदि आस्टिन का विचार अति संकुचित है तो निस्संदेह मेंटलैंड का विचार अति विस्तृत है।

तथपि, एक मध्यम-मार्ग भी है जो प्रोफेसर हांलैण्ड द्वारा उनके विधि संग्रह में व्यक्त विचारों पर आधारित है। अधिकार एक व्यक्ति की दूसरे व्यक्ति के कार्यों को राज्य की सहमति और सहायता से नियन्त्रित करने की क्षमता है। एक नागरिक द्वारा दूसरे नागरिक के विरुद्ध दिए गए अधिकार प्राइवेट विधि की विषय-वस्तु है। राज्य जिन अधिकारों का प्रयोग नागरिकों के विरुद्ध करता है और जिन अधिकारों का प्रयोग वह स्वयं के विरुद्ध करता है वे लोक-विधि के अंतर्गत आते हैं। संवैधानिक-विधि निसंदेह लोक-विधि का अंग है और इस दृष्टि से नागरिकों के विरुद्ध राज्य के अधिकार और राज्य के विरुद्ध नागरिकों के अधिकार संवैधानिक-विधि की विषय-वस्तु है। लेकिन संवैधानिक-विधि में इसके अतिरिक्त कुछ अन्य चीजें भी आती हैं। इसमें राज्य के संगठन का अध्ययन भी शामिल है क्योंकि राज्य एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसे दण्ड देने, सम्पत्ति रखने, ठेके करने और स्वयं तथा जनता के मध्य एवं जनता में आपस के अधिकारों और कर्त्तव्यों को विनियंत्रित करने के अधिकार प्राप्त हैं। यह पूछना आवश्यक है कि इस कृत्रिम व्यक्ति का गठन किस प्रकार होता है। अतः संवैधानिक-विधि से अध्ययन में तीन चीज़ों का

अध्ययन किया जाना चाहिए: 1. सरकार का गठन, 2. नागरिकों के विरुद्ध सरकार के अधिकार तथा 3. सरकार के विरुद्ध जनता के अधिकार। मैं संवैधानिक-विधि की इन सीमाओं और विस्तार को ध्यान में रखते हुए इन व्याख्यानों में भारत सरकार अधिनियम का अध्ययन करना चाहता हूं और प्रो. आनसन ने भी अंग्रेजी संविधान के अध्ययन में इन्हीं दृष्टिकोणों को अपनाया है।

एक अन्य प्रश्न का उठना आवश्यक है जिसका प्रारम्भ में ही समाधान करना बेहतर है। विषय को ऐतिहासिक या वर्णनात्मक रूप में लिया जाए। भारत सरकार अधिनियम के अध्ययन में कुछ ऐतिहासिक तथ्यों को तो छोड़ा नहीं जा सकता है। भारत सरकार अधिनियम में कहा गया है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरुद्ध जो उपचार उपलब्ध थे वे राज्य सरकार के सचिव के विरुद्ध भी उपलब्ध रहेंगे। भारत सरकार अधिनियम में यह भी कहा गया है कि महामहिम लेटर्स पेटेंट के द्वारा उच्च न्यायालय की स्थापना कर सकता है। लेटर्स पेटेंट में कहा गया है कि उच्च न्यायालय, उच्चतम न्यायालय की उन सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा जिनका उसने अधिग्रहण किया है। भारत सरकार के अधिनियम से इसी प्रकार के कई अन्य खण्डों का उल्लेख किया जा सकता है। लेकिन जिन दो खण्डों का उल्लेख किया गया है वे यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त हैं कि इतिहास अपरिहार्य है। इसका कारण यह है कि भारत के संविधान पर विचार करने और राज्य-सचिव के विरुद्ध उपलब्ध उपचारों को समझने के लिए यह मानना आवश्यक है कि जनता की ईस्ट इंडिया कंपनी के विरुद्ध एक नागरिक को क्या उपचार उपलब्ध थे। इसी प्रकार, जब तक यह मालूम नहीं होता कि उच्चतम न्यायालय को क्या शक्तियाँ प्राप्त थीं, उच्च न्यायालय की शक्तियों को समझना कठिन है। यद्यपि कुछ इतिहास जानना आवश्यक है, किन्तु प्रचलित संवैधानिक-विधि का अध्ययन करने के लिए इसके हर भाग का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करना आवश्यक नहीं है। पूरा इतिहास जानना वर्तमान के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है। केवल मूल प्रासंगिक भाग का उल्लेख पर्याप्त है और जब किसी विशेष प्रश्न को ठीक से समझने के लिए इसका ऐतिहासिक विचार आवश्यक है, तो मैं ऐसा ही करूँगा।

(इस विषय पर हमें कोई अन्य निबंध नहीं मिला - संपादक)

2
संसदीय प्रक्रिया पर टिप्पणी

प्रक्रिया प्रपत्र किसी संस्था के कृत्यों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं।

संसदीय संस्था के मुख्य कार्य हैं:

1. कार्यपालिका की किसी कार्यवाही पर विचार व्यक्त करने और आलोचना करने की शक्ति,
2. कानून बनाने की शक्ति,
3. प्रशासन चलाने के लिए धन देने की शक्ति,
4. कार्यपालिका द्वारा की गई किसी कार्यवाही पर विचार व्यक्त करने अथवा आलोचना करने की शक्ति।

कार्यवाही चलाने के नियम इस प्रकार हैं: शक्ति प्रदान करते हैं:

1. प्रश्न पूछने की,
2. प्रस्ताव पेश करने की,
3. सदन-स्थगन का प्रस्ताव करने की,
4. सरकार में अविश्वास का प्रस्ताव पेश करने की।

(1) प्रश्न पूछने की शक्ति

नियम - 7

यह निम्नलिखित प्रतिबन्धों के अध्याधीन है।

कार्यवाही की व्यवस्था

कार्यवाही का क्रम

1. प्राथमिक क्रम: प्रश्न – एक घंटा – अनुदानों का मतदान के दौरान आधा घंटा

2. विधेयक

3. स्थाई आदेशों में संशोधन करने के प्रस्ताव

4. संकल्प

अध्यक्ष किसी विषय को प्राथमिकता दे सकता है

II. विधेयकों, प्रस्तावों और संकल्पों के सम्बन्ध में प्राथमिकता

(i) विधेयक और प्रस्ताव

अत्यंत अग्रवर्ती को कम अग्रवर्ती की तुलना में प्राथमिकता दी जाती है।

(ii) प्रस्ताव

प्राथमिकता बैलट से निर्धारित की जाती है।

गणपूर्ति

बम्बई में 25 सदस्य,

यदि गणपूर्ति नहीं है तो अध्यक्ष अगले दिन के लिए स्थगित कर देगा।

नियम 27: बजट पर दो चरणों में विचार होता है

1. सामान्य चर्चा; और

2. अनुदानों की मांगों पर मतदान

राज्यपाल सामान्य चर्चा के लिए जितने दिन चाहें, रख सकते हैं।

जब सामान्य चर्चा चल रही है तब न तो कोई प्रस्ताव रखा जाता है, न ही मतदान के लिए बजट पेश किया जाता है।

नियम 29: अनुदानों पर मतदान

माँगों पर मतदान के लिए राज्यपाल द्वारा अधिक से अधिक 12 दिन दिए जाएंगे। किसी माँग के लिए दो दिन से अधिक नहीं दिए जाएंगे। अन्तिम निर्धारित दिन अध्यक्ष अनुदानों की मांगों से सम्बन्धित सभी शेष मामलों को निपटाने के लिए हर आवश्यक प्रश्न रखेगा।

नियमः 30

कौंसिल को प्रेषित राज्यपाल की सिफारिश पर ही विनियोग का कोई प्रस्ताव किया जा सकता है। किसी अनुदान को कम करने या किसी अनुदान की किसी मद को हटाने या कम करने के लिए ही प्रस्ताव पेश किए जा सकते हैं, लेकिन किसी अनुदान को बढ़ाने अथवा उसके लक्ष्य को बदलने के लिए प्रस्ताव पेश नहीं किए जा सकते।

नियम 31: अतिरिक्त अनुदान

(लेखक द्वारा कुछ जानकारी नहीं दी गई)

नियम 32: अनुपूरक अथवा अतिरिक्त अनुदान

जब धनराशि कम पड़ती हो।

जब नए स्रोत के विधान करने की आवश्यकता हो।

लोक लेखा समिति

नियम 33: लोक लेखा समिति का गठन

(लेखक ने कोई जानकारी नहीं दी है।)

नियम 34: लोक लेखा समिति के कर्त्तव्य

1. यह समाधान करना कि धनराशि मांग के अनुसार ही खर्च की जाती है और जानकारी में लाना है।

कार्य संचालनः

यह स्थाई आदेशों द्वारा विनिमित किया जाता है।

I सभा-सत्र

1. राज्यपाल द्वारा जारी अधिसूचना में उल्लिखित समय तथा स्थान पर ही सभा आयोजित हो सकती है।

2. राज्यपाल के आदेश द्वारा सत्रावधान होता है।

3. सभा की बैठक उन दिनों और उस समय होगी जैसा अध्यक्ष निर्देश देगा।

सत्रावधान का प्रभाव

सत्रावधान होने पर सभी विचाराधीन सूचनाएं रद्द हो जाएंगी और निम्नलिखित स्थितियों में वित्त मामलों को छोड़कर अन्य सभी मामलों में अगले सत्र के लिए नई सूचनाएं देनी होंगी:

1. प्रश्न
2. संविधिक प्रस्ताव
3. विधेयक पुरःस्थापित
4. प्रवर समिति को सौंपे गए स्थायी आदेशों से संशोधन करने का प्रस्ताव

} ये विषय अगले सत्र की कार्यसूची में सम्मिलित किए जाते हैं।

प्रक्रिया

के सम्बन्ध में

प्रश्नः

अध्यक्ष द्वारा स्वविवेक से निर्धारित रीति में पूछे जाएंगे और उत्तर दिए जाएंगे।

II. स्थगन प्रस्ताव

30 सदस्यों को खड़ा होना होगा।

प्रस्ताव पर चर्चा 4 बजे आरम्भ होगी। वाद-विवाद 6 बजे समाप्त होगा और उसके पश्चात् प्रस्ताव से सम्बन्धित कोई प्रश्न नहीं पूछा जाएगा।

III. विधेयक

चार स्तर

1. पुरःस्थापित करना सदन छोड़ने की अनुमति माँगना।
2. प्रथम पाठन
3. द्वितीय पाठन
4. तृतीय पाठन

(1) ऑस्ट्रेलिया का संविधान धारा 49

(2) कनाडा का संविधान धारा 18

(3) दक्षिण अफ्रीका का संविधान धारा 57

भारत सरकार अधिनियम में ऐसी कोई धारा नहीं है जिसके अन्तर्गत विधानमंडल को कोई विशेषाधिकार दिया गया हो।

भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत विधानमंडल के सदस्यों को केवल दो विशेषाधिकार दिए गए हैं।

I. भाषण की स्वतंत्रता

धारा 67 (7)

भारतीय विधानमंडल के दोनों सदनों में भाषण की स्वतंत्रता होगी। किसी सदन में भाषण देने या मतदान करने या किसी सदन की कार्यवाही के अधिकारिक विवरण में कोई महत्त्वपूर्ण बात होने पर किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही नहीं होगी।

धारा 72 घ (7)

राज्यपाल की विधानसभा में भाषण की स्वतंत्रता होगी। ऐसी सभा में भाषण देने या मतदान करने अथवा ऐसी सभा के अधिकारिक विवरण में कोई अन्य बात होने पर किसी व्यक्ति के विरुद्ध किसी कार्यालय में कोई कार्यवाही नहीं की जाएगी।

भाषण की स्वतंत्रता या विशेषाधिकार दो प्रतिबन्धों के अध्याधीन है।

1. स्थायी आदेश
2. अधिकारिक रिपोर्ट

II. गिरफ्तारी से मुक्ति

यह विशेषाधिकार भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत नहीं दिया गया है। यह भारतीय विधानमंडल में एक अधिनियम के अन्तर्गत दिया गया है जिसका नाम विधनमंडल सदस्य को छूट अधिनियम 1925 है। (1925 की संख्या 23)

इस अधिनियम के अधीन

1. भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत गठित विधानसभाओं के सदस्य जूरी के सदस्य या कोर्ट के सलाहकार के रूप में काम करने के दायित्व से मुक्त हैं।

2. किसी व्यक्ति को दीवानी मुकदमें में गिरफ्तार या नजरबंद नहीं किया जा सकता–

(क) यदि वह भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत किसी विधानसभा का सदस्य हो और ऐसी सभा की बैठक चल रही हो।

(ख) यदि वह ऐसी संस्था की किसी समिति का सदस्य हो और ऐसी संस्था की कोई बैठक चल रही हो।

(ग) यदि वह भारतीय विधानमंडल के किसी सदन का सदस्य हो और दोनों सदनों की संयुक्त बैठक या कांफ्रेन्स की बैठक या दोनों सदनों की संयुक्त समिति में जिसका वह सदस्य है, की बैठक के दौरान और ऐसी बैठक के 14 दिन पूर्व और पश्चात्।

नोट करने की बातें

1. मुक्ति केवल दीवानी गिरफ्तारी से है।
2. इस निर्धारित अवधि के बाद पुनः गिरफ्तारी की जा सकती है।

विधानमंडलों की प्रक्रिया

I. भारतीय विधानमंडलों की प्रक्रिया विनियमित की जाती है –

(1) कार्यवाही नियमों द्वारा और

(2) स्थायी आदेशों द्वारा

धारा 67 (1) के अन्तर्गत केंद्रीय विधानमंडल के लिए नियम और स्थाई।

धारा 67 (6) आदेश बनाए जा सकते हैं।

धारा 72 घ (6) के अंतर्गत केंद्रीय विधानमंडल के लिए नियम और स्थाई ।

धारा 72 घ (7) आदेश बनाए जा सकते हैं।

II. विधानमंडल के नियम और स्थाई आदेश बनाने का अधिकार नहीं है।

उपनिवेशों को यह अधिकार है:

भारत में मामले में इस धारा 129 क लागू होती है। काउंसिल में गवर्नर जनरल द्वारा नियम व स्थाई आदेश बनाए जाते हैं।

स्थायी आदेशों और नियमों में अंतर

1. भारतीय विधामंडल स्थानीय या केंद्रीय नियमों को बदल या रद्द नहीं कर सकता है।

2. कुछ शर्तों के अध्याधीन स्थायी आदेश संशोधित किए जा सकतें हैं।

नियमों और स्थायी आदेशों के भिन्न प्रयोजन

दो प्रश्नः

1. एक विधानमंडल किन मामलों पर चर्चा कर सकता है और इसके अधिकार क्षेत्र में क्या है।

2. यह मानते हुए कि कोई मामला उसके अधिकार-क्षेत्र में है, उस विशेष मामले पर किस प्रकार वाद-विवाद होगा। उसे वाद-विषय कैसे बनाया जाएगा? सदस्य किस क्रम से बोलेंगे? क्या बोलने में किसी को प्राथमिकता मिलती है? मत कैसे रिकॉर्ड किए जाते हैं? उनकी गिनती कैसे की जाती है? उनका मूल्यांकन कैसे किया जाता है?

कार्यवाही नियमों के अनुसार सुलझाई जाती है अथवा दूसरा स्थाई आदेशों के आधार

पर सुलझाई जाती है। अधिनियम की भाषा प्रयोग करने के लिएः-

कार्यवाही के अनुक्रम का विनियमन करते हैं। स्थायी आदेश कार्य संचालन का विनियमन करते हैं।

कायवाही के नियम और कार्य की स्वतंत्रता

क्या कार्यवाही नियम विधायकों को अपने कृत्यों का निर्विघ्न प्रयोग करने के लिए आवश्यक स्वतंत्रता देते हैं?

नियम 8 :

लोक महत्त्व के किसी विषय पर जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रश्न पूछा जा सकता है जिसकी सूचना विशेष रूप से उस सदस्य को देनी होगी, जिसके नाम प्रश्न है।

सूचना की अवधिः

(क) यदि प्रश्न मुख्यता स्थानीय सरकार से सम्बन्धित विषय के बारे में नहीं है तो अध्यक्ष उसे अस्वीकार कर सकता है।

(ख) अध्यक्ष द्वारा स्वीकृत कोई प्रश्न राज्यपाल द्वारा अस्वीकार किया जा सकता है यदि वह निम्नलिखित के बारे में हैः

(i) कोई मामला जो महामहिम की सरकार या भारत सरकार के महामहिम या राज्यपाल या विधानमंडल के राज्यपाल के अन्य देशों के साथ सम्बन्धों को प्रभावित करता है।

(ii) कोई मामला जो उपरोक्त प्राधिकारियों के राजकुमार या महामहिम के अधिराज्य के प्रमुख के साथ सम्बन्धों को प्रभावित करता है या ऐसे राजकुमार या प्रमुख या ऐसे किसी राजकुमार या प्रमुख राज्यक्षेत्र के प्रशासन के बारे में है।

(iii) कोई मामला जो महामहिम के उपनिवेशों के किसी भाग में अधिकारिता रखने वाले न्यायालय के विचाराधीन है।

ध्यान दीजिए : यदि कोई संदेह उत्पन्न होता है तो राज्यपाल उसका निर्णय करेंगे और निर्णय अंतिम होगा।

(ग) विधानमंडल के राज्यपाल अथवा राज्य के सचिव और स्थानीय सरकार के बीच विवाद होने की स्थिति में तथ्यात्मक मामलों के सिवाए किसी अन्य मामले के बारे में कोई प्रश्न नहीं पूछा जाएगा और उत्तर तथ्यात्मक विवरण तक ही सीमित होगा।

(ii) प्रस्ताव पेश करने का अधिकार

नियमत 22-23

नियम 23 (1)

प्रत्येक प्रस्ताव सरकार को सम्बोधित विशिष्ट सिफारिश के रूप में होगा।

कानूनी प्रतिबन्ध

ऐसे मामले के बारे में प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता जिसके बारे में प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।

नियम 22:

प्रस्ताव पेश करने के अधिकार पर कानूनी प्रतिबन्धों के अलावा राज्यपाल को सूचना की अवधि के दौरान किसी संकल्प को इस आधार पर अस्वीकृत करने की शक्ति है कि लोक-हित को नुकसान पहुँचाए बिना इसे पेश नहीं किया जा सकता अथवा इसका सम्बन्ध ऐसे मामले से है जो मुख्यतया स्थानी सरकार का विषय नहीं है।

प्रस्ताव के विरुद्ध निषेध

नियम 24 क

1. सामान्य लोक-हित के किसी मामले पर तभी चर्चा होगी जब इसे प्रस्ताव पेश

करने के नियमों के अनुसार प्रस्ताव के रूप में उठाया जाएगा और अध्यक्ष तथा सम्बन्धित सरकारी विभाग के सदस्य इससे सहमत होंगे।

2. अध्यक्ष या सरकार का सम्बन्धित सदस्य किसी ऐसे विषय के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पेश करने की अनुमति नहीं दे सकेगा जिसके सम्बन्ध में प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता।

(iii) स्थगन प्रस्ताव

नियम 11 और 12

नियम 11

अविलम्बनीय लोक-महत्त्व को स्पष्ट मानने पर चर्चा करने के प्रयोजनार्थ सभा की कार्यवाही स्थगित करने का प्रस्ताव पेश किया जा सकता है।

नियम 12

यह निम्नलिखित प्रतिबन्धों के अध्याधीन होगा :-

(i) एक ही बैठक में इस प्रकार का केवल एक ही प्रस्ताव लाया जा सकेगा।

(ii) एक मामले से अधिक पर चर्चा नहीं हो सकती। यह हाल की घटना के विशिष्ट मामले के बारे में होना चाहिए।

(iii) प्रस्ताव में ऐसा कोई मामला नहीं उठाया जाना चाहिए जिसे पहले ही निपटा दिया गया हो।

(iv) प्रस्ताव में कोई ऐसा मामला नहीं उठाया जाना चाहिए जिसे पहले ही कार्यवाही में शामिल किया गया हो या जिसकी सूचना दी जा चुकी है :-

1. प्रस्ताव ऐसे विषय के बारे में नहीं होना चाहिए जिसके बारे में प्रस्ताव पेश नहीं किया जा सकता।
2. अध्यक्ष को अवश्य अपनी स्वीकृति देनी चाहिए।

(iv) अविश्वास का प्रस्ताव

नियम 12(क)

एक मंत्री में अविश्वास व्यक्त करने वाला प्रस्ताव अथवा एक मंत्री विशेष की नीति का निर्मोदन करने का प्रस्ताव।

3

भारत के इतिहास पर टिप्पणी

(हस्तलिखित पांडुलिपी से उद्धृत-सम्पादक)

I

भारत के इतिहास के लिए आधुनिक तुर्की कबीलों से मिलते-जुलते मध्य एशिया के भ्रमणशील शकों और यू-ची कबीलों के लिए जीतों का अधिक महत्त्व है।[1] शक पहले इली नदी की घाटी में रहते थे। यू-ची आगे बढ़े तो इन्हें दक्षिण की ओर हटना पड़ा और वे अन्ततः 150 ई. पू. में उत्तर-पश्चिम भारत में पहुँचे। वहाँ उन्होंने कई छोटे राज्य स्थापित किए जिनके राजाओं ने, जान पड़ता है, कुछ समय के लिए पार्थियनों के आधिराज्य को स्वीकार कर लिया और क्षत्रप की उपाधि धारण कर ली। यह साफ है कि पश्चिमी भारत विदेशी राजाओं की झोली में चला गया जो शक, यवन या पल्लव कहलाए। जिनकी शासन-सीमाएँ और सम्बन्ध लगातार बदलते रहे। इन राज्यों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण "महान क्षत्रप" जाने जाते थे जिसमें सौराष्ट्र (काठियावाड़) व उसके आसपास के मुख्य भूमि के भाग सम्मिलित थे जो लगभग 395 ई. पू. तक रहे।

ई. पू. 100 के लगभग यू-ची ने चीन के सीमाप्रान्त से पश्चिम की ओर प्रस्थान किया और शकों को आगे खदेड़ते हुए कैदफीसेस बैक्ट्रिया में बस गए। यहां कुषाण नामक उनके एक कबीले का मुखिया, जिनका नाम कैदफीसेस था, दूसरों पर अपना अधिकार जमाने में सफल हुआ। उसने एक राष्ट्र की स्थापना की जो कबीले के नाम से जाना जाने लगा। कुषाण साम्राज्य का कालक्रम भारतीय इतिहास का एक जटिल प्रश्न है और नीचे दी गई निश्चित तारीखों का उल्लेख इसलिए किया गया है कि विस्तृत वाद-विवाद के लिए कोई गुंजाइश नहीं है और तथ्यों पर आधारित जानकारी उपलब्ध नहीं है।

---

1. *लेकिन कदाचित भाषा में नहीं। हाल की खोज से इस बात के संकेत मिले हैं कि कुषाण या यू-ची ने संभवतया ईरान की बोली का प्रयोग किया।*

कैदफीसेस प्रथम (15–45 ई.) अपने साम्राज्य को संगठित करने के पश्चात् अपनी फौजों के साथ दक्षिण की ओर बढ़ा, काबुल और संभवतया कश्मीर को जीता उसके उत्तराधिकारी कैदफीसेस द्वितीय (45–78 ई.) ने उत्तरी सिंध समेत सम्पूर्ण उत्तर–पश्चिम भारत की ओर संभवतया बनारस को अपने साम्राज्य में शामिल कर लिया। उस समय भारत और रोमन साम्राज्य के बीच अच्छा व्यापार था और कनिष्क (78–123 ई.), जो कैदफिसेस का उत्तराधिकारी था, ने दूतावास को ट्रोजन भेज दिया। इस राजा ने बाद के बौद्ध इतिहास में वही भूमिका निभाई जो अशोक ने पहले के इतिहास में निभाई[1] उसने पार्थियों व चीनियों से युद्ध किए और उनके साम्राज्य में, जिसकी राजधानी पेशावर थी, अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया, काशगर, पारखिड, खोटान[2] और कश्मीर शामिल थे। ये उपनिवेश, जो संभवतया पूर्व में गया तक फैले हुए थे, उसके उत्तराधिकारी हाविस्का (123–140 ई.) और वासुदेव (140–178 ई.) द्वारा अपने अधिकार में बनाए रखे गए। लेकिन इस अवधि के पश्चात् कुषाण और आन्ध्रा भारत की शक्ति के तौरपर समाप्त हो गए, यद्यपि कुशण राजा काबुल पर शासन करते रहे। उनके पतन के कारण अज्ञात हैं। लेकिन इसे पर्सिया के सानिड्स के उत्थान से जोड़ा जा सकता है। भारत का 100 से अधिक वर्षों का राजनैतिक इतिहास बिल्कुल कोरा है और उसके बारे में इतना कहा जा सकता है, कि सौराष्ट्र राज्य शक राजवंश के अंतर्गत चलता रहा।

गुप्त राजवंश के उत्थान के साथ पुनः राजनैतिक इतिहास प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ जो आधुनिक हिन्दू धर्म के आरंभ और बुद्ध धर्म के लिए प्रतिक्रिया का सूचक है। यद्यपि मौर्य वंश की प्राचीन शाही नगरी पाटलीपुत्र के भाग्य के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं है। यह हमारे समय के पहले तीन सौ वर्ष तक लगातार बनी रही। 320 ई. में चंद्रगुप्त प्रथम स्थानीय राजा ने अपने उपनिवेशों में वृद्धि की और गुप्तकाल की संस्था द्वारा राज्याभिषेक करवाया। उसके लड़के समुद्रगुप्त ने अपनी लड़ाईयाँ जीतने का सिलसिला जारी रखा और एक असाधारण मुहिम में जो लगभग 340 ई. में समाप्त हुई, उसने सम्पूर्ण प्रायद्वीप को अधिकार में कर लिया। उसने इन सब क्षेत्रों को अपने अधिकार में बनाए रखने का कोई प्रयत्न नहीं किया लेकिन उसका प्रभुत्व बड़े क्षेत्र में हुगली से यमुना और पश्चिम में चंबल नदी तक तथा हिमालय से नर्मदा तक फैला हुआ था। चंद्रगुप्त द्वितीय या विक्रमादित्य ने अपने अधिकार क्षेत्र में मालवा, गुजरात और काठियावाड़ को जोड़ा और 50 से अधिक वर्षों तक गुप्तों ने लगभग पूरे उत्तरी भारत पर बिना किसी विघ्न

---

1. *फलौट एवं फ्रैन्क समझते हैं कि कनिष्क ने दो कैडफिसैस के पूर्व 58 ई पू. शासन प्रारम्भ किया था।*
2. *ऐसा प्रतीत होता है कि उसे इन क्षेत्रों में चीनी जनरल पान–चो ने 90 ई. के आसपास हराया लेकिन 15 वर्ष बाद वह अधिक सफल हुआ।*

के राज्य किया। केवल राजपूताना और सिन्ध ही ऐसे क्षेत्र थे जो उनके अधिकार क्षेत्र में नहीं थे। पहले इनकी राजधानी पाटलीपुत्र थी, लेकिन बाद में कौशाम्बी और अयोध्या राजा के निवास-स्थान हो गए।

गुप्तों का पतन हूणों, एफ्थेलाइट[1] या हवाइट हूणों ताकि स्पष्टतया हूणों की एक शाखा जैसे बर्बर लोगों के आक्रमण से हुआ, जिन्होंने यूरोप पर आक्रमण किया। यह शाखा एशिया में पीछे रह गई और उत्तरी परशिया पर कब्जा कर लिया। इन्होंने भारत पर पहला आक्रमण 455 ई. में किया, और पराजित हुए। लेकिन करीब 490 ई. में और अधिक बल के साथ लौटे और गुप्तों को तहस-नहस किया। 540 ई. तक उनके राजा तोरमन ओर मिहिरगुल का उत्तरी भारत पर अधिकार रहा। उनकी स्थानीय राजधानी पंजाब में सियालकोट में थी हालांकि उनका हैडक्वार्टर बार्मियान और बलख में था। मिहिरगुल के अत्याचारों से त्रस्त होकर हिन्दू राजा एकजुट हो गए और उन्होंने हूणों को उत्तर की ओर भगा दिया। 565 ई. के करीब फारसी और तुर्की सेनाओं ने मिलकर उनका समूल विनाश कर दिया। यद्यपि इन्होंने कोई स्थायी राज्य स्थापित नहीं किया, फिर भी इनका आक्रमण महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि जब उनकी राजनैतिक सत्ता टूटी तो उनमें से बहुत लोग गुर्जर समुदाय में शामिल हो गए और शक तथा कुषाणी की भांति उत्तरी-पश्चिमी भारत के जनसमुदाय विशेष रूप से राजपूत वंशों का अँग बन गए।

हुणों की हार के पश्चात् एक बार फिर अंधकार युग आया। लेकिन सातवीं शताब्दी के आरंभ में थानेश्वर के राजा हर्ष ने (606-647 ई.) 35 वर्षों की लड़ाई के बाद एक राज्य स्थापित किया जो उनके जीवन पर्यन्त तक भी नहीं चला, कुछ समय के लिए गुप्त साम्राज्य बड़ा विस्तृत और सम्पन्न हो गया। चीन के तीर्थ-यात्री ह्वांग चांग, जो उसके दरबार में कन्नौज में आया था, के विवरण से पता चलता है कि बंगाल, आसाम और उज्जैन के राजा उनके जागीरदार थे, लेकिन पंजाब, सिंध व कश्मीर स्वतंत्र थे। दक्षिण में बंगाल, कलिंगा को जनशून्य कर दिया गया था लेकिन हर्ष दक्कन के चालुक्य राजा पुलैकेसिन II को पराजित नहीं कर सका।

अब हम थोड़ी देर के लिए दक्षिण के इतिहास पर नजर डालेंगे। घटनाओं और कालक्रम की दृष्टि से यह उत्तर की अपेक्षा अधिक अंधकारमय है, लेकिन हमें द्रविड़ के देशों को निर्धन और बर्बर नहीं समझना चाहिए। यूरोप के प्रतिष्ठित लेखकों को भी इनकी कुछ जानकारी थी। राजा पंड्या (पांडियन) ने 20 ई. पू. में एक मिशन आगस्टस

1. *विन्सैन्टमिया की "अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" 1908 पृष्ठ 40 देखिए*

2. *स्टारबो X V. 4, 73*
Hist. Vol. vi 23 (26)

के पास भेजा था। प्लिनी[2] ने मोदुरा (मदुरा) का उल्लेख किया है तथा क्लैमी ने भी इस कस्बे का जिक्र 40 अन्य कस्बों के साथ किया है। यह कहा जाता है कि मजीरीस में आगस्टस को समर्पित एक मन्दिर था जो क्रेगनोरे के नाम से जाना जाता था। आदिकाल से प्रायद्वीप का दक्षिणी क्षेत्र पांडया, चेरा और चोल नामक तीन राज्यों में विभाजित था।[3] पहले के अंतर्गत मदुरा और तिचेवेल्ली जिले आते थे। चेरा और केरल पश्चिमी–तट पर आधुनिक त्रावनकोर में थे। चोल देश में तंजौर त्रिचीनोपल्ली, मद्रास और मैसूर के अधिकांश भाग आते थे। छठी से आठवीं शताब्दी तक पल्लवा नामक चौथी महत्त्वपूर्ण शक्ति थी जो स्पष्टतः मद्रास महाप्रांत के उत्तर से आए थे। इनकी राजधानी कांजीवरम में थी और शेष तीनों राज्यों से इनकी प्रायः लड़ाई रहती थी। उनके राजा, नरसिंहा (625–645 ई.) ने वर्मन दकन के कुछ भाग और चोल राज्यों के बड़े भाग पर शासन किया लेकिन लगभग 750 ई. के बाद इनका पतन आरम्भ हुआ जबकि चोल मजबूत होने लगे और राजराजा (985–1018 ई.) ने, जिनके उपनिवेशों में मद्रास महाप्रांत और मैसूर शामिल थे, दक्षिण भारत में इनको सर्वोत्तम शक्ति बना दिया और वे तेरहवीं शताब्दी तक शक्ति बने रहे।

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, दकन पर 220 ई. पूर्व से 236 ई. तक आंध्रों ने राज्य किया, लेकिन उसके पश्चात् 300 वर्ष तक इसके इतिहास के बारे में कुछ ज्ञात नहीं है। यह स्थिति तब तक बनी रही जब तक कि बीजापुर के बतापी (बादामी) में चालुक्य राजवंश का उत्थान नहीं हुआ। इस राजवंश के पुलकेसिन II (600–642 ई.), जो हर्ष के समकालीन थे, कुछ समय तक एक विरोधी साम्राज्य स्थापित करने में सफल हुए जो गुजरात से मद्रास तक फैला हुआ था, और वह इतना शक्तिशाली था कि उसने पार्शिया के राजा खुसरू द्वितीय से राजदूतों का आदान–प्रदान किया जैसा कि अजन्ता के प्लास्टर में मिलता है लेकिन 642 ई. में उसे पल्लवा राजाओं ने हराकर उसके साम्राज्य का अंत कर दिया। पुलाकेसिन और हर्ष की मृत्यु के पश्चात् राजपूत–काल आरम्भ होता है जो 650 से 1000 ई. तक चलता रहा। इस अवधि के दौरान कई राज्य अस्तित्व में आए जिन पर नाम के लिए हिन्दु राजवंशों का शासन था जो प्रायः उत्तर के आक्रांताओं या गैर–हिन्दु आदिवासी कबीलों की संतान थे। उनमें निम्नलिखित हैं:

1. कन्नौज या पांचाल – हर्ष की मृत्यु के पश्चात् यह राज्य अनेकों कठिनाइयों से गुजरा लेकिन 840 से 910 ई. तक भोज (या मिहिर) और उसके पुत्र के अधीन यह उत्तर भारत में प्रमुख शक्ति बन गया और बिहार से सिंध तक उसका विस्तार हो गया। 12वीं शताब्दी में यह फिर से गहरवार राजवंश के अधीन महत्त्वपूर्ण बन गया।

---

3. *'अशोका अभिलेखों' में चार राज्य है – पोंड्या, केरालापुत्रा, कोला और सत्यपुत्र*

2. कन्नौज की बंगाल के पालों से प्रायः लड़ाई होती रहती थी जो बौद्ध राजा थे जिनका आरम्भ 730 ई. में हुआ था। धर्मपाल (800 ई.) काफी शक्तिशाली था और उसने कन्नौज के राजा को गद्दी से उतार दिया। बाद में पाल राज्य का पूर्वी भाग पृथक हो गया जो स्वयं सेना नामक विरोधी राजवंश के अधीन हो गया।

3. जमुना के दक्षिण में स्थित जेजकाभुक्ति (बुन्देलखण्ड) और चेदि (जो मध्य राज्यों के बराबर था) जिलों में चंदेल और कलचूरी नामक दो राजवंशों का राज्य था। ऐसा समझा जाता है कि वे आरम्भ में गौंड थे। इन्होंने बहुत सी इमारतें बनवाईं जिनमें खासतौर से खजुराहो के मंदिर शामिल हैं। कीर्ति वर्मन चंदेल (1049–1107 ई.) ने उनके राज्य-क्षेत्रों को बहुत बढ़ाया। वह शिक्षा का हिमायती था और अन्योक्तिपरक नाटक "प्रबोध-चंद्रोदय" उसके दरबार में तैयार किया गया था।

4. इसी प्रकार मालवा के परमार (पवार) राजवंश को साहित्य का हिमायती माना जाता था और राजा मुंज (974–995 ई.) एवं भोज (1010–1060 ई.) लेखक व सफल योद्धा थे।

2

शक युग

विन्सैन्ट स्मिथ के अनुसार, पहले 78 ई. जो अत्यधिक संभाव्य जान पड़ती है, अपनाने के पश्चात् अन्तिम तौर पर 120 ई. को चुना गया और हम मान सकते हैं कि इस तारीख से, जिसका आरम्भ कनिष्क ने किया, शक युग आरम्भ होता है।

मुख्य कुषाण राजा किस क्रम में आए, इनके बारे में अभी भी निश्चित-तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रायः यह माना जाता है कि कनिष्क कदाफिसेस प्रथम (कुजुला कारा कदाफिसेस) और द्वितीय (विम कदाफिसेस) के पश्चात् आया। इन दोनों से पहले बैक्ट्रीनिज सीथियन ने, डॉ. स्मिथ के अनुसार, 40 ई. के करीब सत्ता अवश्य प्राप्त कर ली होगी। उसने गांधार और तक्षशिला की गद्दी व पार्शिया के राजा गान्डोफेरस से छीनी जिसने धर्म-प्रचार के प्रक्षिप्त कार्यों के अनुसार संत-थोमस का स्वागत किया। उसके लड़के विभा (78–110 ई.) ने अपने लिए एक बड़ा साम्राज्य खड़ा किया जिसमें पंजाब और गंगा घाटी का पूरा पश्चिमी भाग शामिल था।

ऐसा में मालू होता है कि कदाफिसेस और कनिष्क के मध्य 10 वर्ष का अंतराल रहा। कनिष्क वाजिष्क वाकि पुत्र था और उनके पूर्वजों का संबंधी नहीं था। ऐसा प्रतीत

होता है वह खोतान का था, न कि बैक्ट्रिया का। निस्संदेह वह कापसी परोषण[1] में गर्मियाँ तथा सर्दियाँ पुरुषपुर (पेशावर) में बिताता था। ग्रीको-ईरानियन (देश का मध्य) अब उसके साम्राज्य की धुरी नहीं रह गया था।[2]

कनिष्क साम्राज्य बहुत दिन तक नहीं चला। उसके दो पुत्रों वासिस्का और हविस्का में से केवल दूसरा उसकी मृत्यु के बाद जिन्दा रहा।

तीसरी शताब्दी में कुषाणों की शक्ति घटकर बैक्ट्रिया, काबुल और गांधार तक सीमित रह गई और वे सस्सानिद शासकों के साम्राज्य के अंतर्गत आ गए।

क्षत्रप या सत्रप

यह पद, जो ईरानी है, शकों द्वारा स्थापित दो राजवंशों ने धारण किया जिनको युच-ची आक्रमण के कारण अपने देश से भागना पड़ा।

1. पहला सौराष्ट्र (काठेवाड़) में स्थापित हुआ था। इस कुल के एक राजकुमार चासथाना ने कुषाणों के महान दिवसों से पूर्व मालवा जीत लिया था और कनिष्क का जागीरदार बन गया था; उसने उज्जयनी पर राज्य किया, जो भारतीय सभ्यता की केंद्र थी।

2. दूसरा वंश, जिससे क्षत्रप का नाम खासतौर से जुड़ा हुआ है, परम्परागत रूप से आंध्रों का बैरी था; इसने महाराष्ट्र देश पर शासन किया जो आधुनिक सूरत व बम्बई के बीच था। इसके बाद की शक रियासत को शतकरनी ने नष्ट किया था जिसकी व्यवस्था पहले से की गई थी। जिस समय उज्जयिनी के क्षत्रप रुद्मान ने आंध्र के राजा को जीता। ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वी और पश्चिमी राज्यों के बीच आदर्शों को लेकर बैर था। पोरखनों जैसे भारत या सेरिंडिया के सभी सीथियों की भांति शकों ने विदेशी होने के बारे में भी बौद्ध धर्म के प्रति सहानुभूति रखी जबकि आंध्र ब्राह्मणवाद के महान समर्थक थे।

गुप्त-युग

तीसरी शताब्दी की घटनाएं इतिहास को मालूम नहीं हैं और हमें कुषाण साम्राज्य के बारे में बहुत कम जानकारी है।

---

1. पत्र पांडुलिपि में नहीं है।

2. दीमक ने खा लिया था अपनी ओर से लिखा गया।

दिन का प्रकाश 318–19 ई. में वापस लौटता है जब पुराने देश मगध में एक नए राजवंश गुप्त का उत्थान होता है।

गुप्त राजवंश चंद्रगुप्त द्वितीय ने उज्जैन के शक राजवंश के प्रथम महान क्षत्रप को हराकर मालवा, गुजरात और सौराष्ट्र (काठिवाड़) को अपने अधीन कर लिया। अपने राज्य का पश्चिम की ओर विस्तार करने के रूप में उसने पाटलीपुत्र के स्थान पर अयोध्या और कोशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया। उसने लगभग 115 ई. पू. में सिंध का नीचे का भाग और काठिवाड़ जीता, राजपूताना एवं अवध में युद्ध छेड़ा, लेकिन जमुना के किनारे पर स्थित मथुरा को जीता और पाटलीपुत्र तक पहुँच गया।

पुष्यमित्र ने उसे बुरी तरह हराया। बैक्ट्रिया क मसे कम उत्तर में पार्शिया तथा भारत के मध्य एक रुकावट था। इसलिए भारत को पार्शिया से आक्रमण का कम खतरा था। बहरहाल, पार्शिया के एक राजा मिथराडेज़न प्रथम (171–136 ई.) ने 130 के लगभग तक्षशिला देश को कुछ वर्षों के लिए अपने कब्जे में ले लिया।

पार्शिया और बैक्ट्रिया की स्वतंत्रता का अंत

पार्शिया और बैक्ट्रिया की आज़ादी का अंत एक नए आक्रमण से हुआ जो भारत से दूर मंगोलिया की तराई में कबीलों के उथल–पुथल के कारण हुआ।

लगभग 170 ई. पू. हियान्ग–न्यु या हुणों द्वारा गोबी, वर्तमान कांसू से निकाले जाने पर यूच–ची या टोखारी खानाबदोश सीथियों का एक समूह बेतहाशा दूसरे देशों में जाकर बसने लगा जिससे एशिया का समूचा संतुलन बिगड़ गया।

वे शकों पर टूट पड़े, जो ईरानी सीथियन थे और पार्शिया साम्राज्य के उत्तर में रह रहे थे, तथा जजारटेस के उत्तर में उनके चरागाहों में बस गए। वहाँ से हटाए गए शकों ने पार्शिया तथा बैक्ट्रिया का तख्ता पलट दिया और इस प्रकार 140–120 ई. पू. के बीच यूनानी शासन के अंतिम अवशेष को भी मिटा दिया! तत्पश्चात् बू–सुन कबीले द्वारा पराजित होने पर तोखारियों ने ऑक्सस में अपने को स्थापित कर लिया और उसके बाद उन्होंने भारत के द्वार पर पूर्वी ईरान में शकों के पूरे देश पर कब्जा कर लिया। इस प्रवेश द्वार का पता ईसा मसीह के पश्चात् पहली शताब्दी में लगा।

भारत की पराजय का श्रेय कुषाणों को जाता है जिनके राजवंश ने यू–ची कबीलों को संगठित किया और दोनों ने अपने कुटुम्ब–जनों पार्शिया के शकों और पंजाब के लोगों पर अपना शासन स्थापित कर लिया।

इस वंश का मुख्य राजा कनिष्क 57 ई. पू. और 200 ई. के बीच किसी अनिश्चित तारीख्श को सत्तारूढ़ हुआ।

महल के एक महापौर को साइब्रेनी लिवी पुष्यमित्र नाम से पुकारता था।

सेल्युसिस साम्राज्य पर एन्टीच्योस तृतीय ने 261–246 ई. पू. तक शासन किया और पार्शिया तथा बैक्ट्रिया के दो प्रदेश गवां दिए जो प्रदेश एकदम आज़ाद हो गए। पार्शियन जिन्हें भारतीय पहलवा कहते थे, टुरकोमन के पास मैदान के खानाबदोशों से सम्बन्धित थे, उन्होंने कैस्पियन के दक्षिण–पूर्व देश पर कब्जा कर लिया। बैक्ट्रिया के उत्तर–पूर्व में फैले हिन्दू कुश तथा ऑक्सस के बीच बस गए; उनके कस्बों की संख्या और सम्पत्ति के बारे में कई दन्तकथाएँ हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों कबीलों ने पश्चिम में एन्टीव्योत ओर उसके उत्तराधिकारियों – सैल्यूकस द्वितीय 246–226 ई. पू. और तृतीय (226–223 ई.पू.) को भागने में उनकी कठिनाइयों का लाभ उठाया।

पार्थी–विद्रोह एक स्वाभाविक घटना थी जिसका नेतृत्व आरसेसेस ने किया जो आरसेक्स उस राजवंश का संस्थापक था जिसने पार्शिया पर लगभग 500 वर्ष तक राज्य किया।

यूनान के एक सत्रप की महत्वकांक्षा के कारण बैक्ट्रिया का उत्थान हुआ। डायडोरोस एशिया के मध्य में हेलेनवाद से अलग एक धारा का प्रतिनिधित्व करता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत–ईरान सीमा पर उद्यमशील राष्ट्रों से अशोक साम्राज्य को उसके उत्तराधिकारियों के समय में कमजोर करने में सहायता मिली।

पंजाब के लिए, जो कभी फारस का सूबा था और बाद में सिकन्दर का एक प्रान्त बन गया, हमले का खतरा बढ़ गया क्योंकि अब छोटे लेकिन उपद्रवी राज्य उसके द्वार पर बन गए थे। डियोडोटोस प्रथम और द्वितीय के बाद बैक्ट्रिया का राजा एंस्थींजन मास बना जिसने सीरिया के महान एंटीयौचैस से युद्ध किया। लगभग 208 ई. में बैक्ट्रिया की स्वतंत्रता की मान्यता के साथ ही शांति हो गई। लेकिन युद्ध के दौरान सीरिया की कुछ सैनिक टुकड़ियों ने हिन्दूकश पार कर लिया और काबुल घाटी में घुस कर राजा सुभगसैन को नष्ट कर दिया। एन्थीडैमस के पुत्र डेमैटिअस ने अपना साम्राज्य न केवल वर्तमान अफगानिस्तान में बढ़ाया, बल्कि भारत में भी बढ़ाया और भारतीयों के राजा की पदवी धारण कर ली (200–190 ई.पू.)। 190 और 180 ई. पू. के बीच यूनान के पालियोन व अगथोकिल्स नामक साहसी लोगों का तक्षशिला पर राज्य था। करीब 160 से 140 (ई. पू.) के बीच काबुल और बंगाल पर मिलिंद या मिनन्दर नामक एक यूनानी का शासन था, जिसने बौद्ध धर्म के इतिहास में अपना नाम किया।

कुमार गुप्त के अंतिम वर्षों में नए हूण ईरानी लोगों ने साम्राज्य पर आक्रमण कर

दिया, लेकिन उन्हों सीमाओं से दूर हटा दिया गया। समुद्रगुप्त के समय भयानक प्रवसन की पहली लहर उन्हीं सीमाओं में आई। इसमें मांगेल के खानाबदोश लोग थे जिनको भारतीयों ने बाद में उचित नाम हूण दिया, जिन हूणों ने यूरोप पर आक्रमण किया उनको भी हम इसी नाम से पहचानते हैं। पाँचवीं शताब्दी के मध्यकाल के पश्चत भारत पहुँचे हूण सफेद हूण थे अथवाएरीलिदेंस जो बनावट में अट्टीला के भयंकर अनुचरों की अपेक्षा तुर्कों के अधिक निकट थे। आक्सस घाटी में ठहरने के पश्चात् उन्होंने पार्शिया और काबुल पर अधिकार कर लिया। स्कन्दगुप्त ने उन्हें कई वर्षों के लिए भगा दिया था (455 ई.)। लेकिन 484 ई. में सस्सानिंद* की इनके द्वारा हत्या कर दिए जाने के पश्चात् कोई भारतीय राज्य उनको नहीं रोक पाया। उनमें से तोरामन नामक एक ने 500 ई. में अपने को मालवा में स्थापित कर लिया और उसके लड़के मिहिरगुल ने पंजाब में सकोल (स्यालकोट) में अपनी राजधानी स्थापित कर ली।

एक स्थानीय राजकुमार यशोधरमन ने मिहिरगुल की अधीनता स्वीकार करने से इंकार कर दिया। हुणों को सभी जगहों से पूरी तरह नहीं निकाला गया। बहुत से हूण सिंधु घाटी में रह गए।

सातवीं शताब्दी के आरम्भ में दिल्ली के निकट एक छोटे से प्रदेश स्थानविस्वर (थानेश्वर) में अव्यवस्था होने पर एक बड़ी शक्ति उभरी। वहाँ एक साहसी राजा प्रभाकर बर्द्धन ने राजय संगठित किया जिसने गुर्जरों, मालवों और अन्य पड़ोसी राजाओं के विरुद्ध साहस का प्रदर्शन किया। 604 ई. या 605 ई. में उसकी मृत्यु के पश्चात् तुरन्त ही उसके बड़े लड़के की बंगाल में गौडस के राजा के आदेश से हत्या कर दी गई। सत्ता उसके छोटे भाई हर्ष को मिली।

4

मनु और शूद्र

(यह डॉ. अम्बेडकर की हस्तलिखित 31 पृष्ठ की पांडुलिपि है। इस अध्याय को कोई शीर्षक नहीं दिया गया है। इसे भी इसे नहीं किया गया है। शीर्षक प्रस्तावित है – सम्पादक)

I

पाठक अब जान गए हैं कि मनु के अनुसार समाज दो मुख्य वर्गों में विभक्त था: वे जो चार वर्णों में नहीं आते थे और वे जो चार वर्णों में आते थे। पाठक यह भी जानते हैं कि आज के अछूत चारों वर्णों में न आने वाले वर्ग का प्रतिरूप हैं और चार वर्णों में आने वाले लोग चार वर्णों में न आने वाले लोगों से भिन्न थे। वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र नाम वाले चार विभिन्न वर्गों से बनी एक पूर्ण व्यवस्था थे। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में समुदाय की अपेक्षा न केवल वर्गों पर ही अधिक बल दिया गया है, अपितु यह वर्गों के बीच और इसलिए व्यक्तियों के बीच असमानता पर आधारित है। दूसरे शब्दों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्ग तथा अछूत (अंत्यज) बराबर स्तर के नहीं हैं। ये एक के ऊपर एक हैं। कोई हिन्दू इस कथन का खण्डन नहीं करेगा। हर भारतीय यह जानता है। यदि किसी व्यक्ति को इसमें कोई संदेह हो सकता है तो वह विदेशी ही हो सकता है। लेकिन किसी विदेशी को कोई शंका होगी तो उसकी वह शंका मनु का कानून देखने से दूर हो जाएगी जो हिन्दू समाज का मुख्य निर्माता है और जिसका कानून हिन्दू समाज की नींव है। ऐसे व्यक्ति के लाभ के लिए मनु-स्मृति से ऐसे पाठ उद्धृत करता हूँ जिन से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दू समाज असमानता के सिद्धान्त पर आधारित है।

II

यह दावा किया जा सकता है कि मनु ने अपनी स्मृति में जिस असमानता की बात की है उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। यह प्राचीन इतिहास है और यह नहीं माना जा सकता कि हिन्दु के वर्तमान आचरण पर इसका कोई प्रभाव पड़ा है। मुझे विश्वास है

कि इससे बड़ी कोई भूल नहीं हो सकती। मनु प्राचीन काल का मामला नहीं है। यह प्राचीन से अधिक वर्तमान का है। यह एक जीवन्त अतीत है, और इसलिए उतना ही वर्तमान है जितना कि वर्तमान हो सकता है।

अंग्रेजी शासन से पहले मनु द्वारा प्रतिपादित असमानता देश की कानून थी इसके बारे में बहुत से विदेशियों को जानकारी नहीं है। कुछ उदाहरणों से ही स्पष्ट हो जाएगा कि वस्तुस्थिति ऐसी ही थी।

मराठों और पेशवाओं के शासनकाल में अछूत शाम 3 बजे से प्रात: 9 बजे तक बीच पेशवाओं की राजधाानी पूना शहर के द्वार के अंदर नहीं जा सकते थे क्योंकि सायं 3 बजे के पश्चात् और प्रात: 9 बजे से पहले इनके शरीर की परछाई लम्बी होती थी और इसकी परछाई जब किसी ब्राह्मण पर पड़ती थी वह अपवित्र हो जाता था और जब तक वह इस अपवित्रता को दूर करने के लिए स्नान नहीं करता था तब तक वह कुछ भी खा-पी नहीं सकता था। इसी प्रकार कोई अछूत शहर के भीतर नहीं रह सकता था; पशु और कुत्ते तो बिना किसी रोक-टोक के प्रवेश कर सकते थे लेकिन अछूत नहीं आ सकते थे।[1]

मराठाओं और पेशवाओं के शासनकाल में अछूत भूमि पर थूक नहीं सकते थे क्योंकि हिन्दुओं के पांव का इससे स्पर्श होने से हिन्दू अपवित्र हो जाता था, अछूतों को अपनी थूक डालने के लिए अपने गर्दन के इर्द-गिर्द एक मिट्टी का बर्तन लटकाना पड़ता था। उन्हें अपने पदचिह्नों को मिटाने के लिए अपने साथ एक पेड़ की कांटेदार टहनी घसीटनी पड़ती थी और जब कोई ब्राह्मण उसके पास आ जाता था तो अपना मुँह उल्टा करके कुछ दूरी पर लेटना पड़ता था ताकि उसकी परछाई ब्राह्मण पर न पड़े।[2]

महाराष्ट्र में एक अछूत को अपने गले में या अपनी कमर पर एक काला धागा पहनना पड़ता था ताकि उसकी आसानी से पहचान हो सके।[3]

गुजरात में अछूतों को अपनी अलग पहचान के लिए सींग लगानी पड़ती थी।

---

1. डॉ. मरे मिचेल - ग्रेट रिलीजन ऑफ इंडिया, पृष्ठ 64।

2. बांबे गजेरियर, वाल्यूम XII, पृष्ठ 175।

3. एनसाइक्लो. आर एंड ई वाल्यूम IX पृष्ठ 636।

4. पंजाब सेंसेस रिपोर्ट 1911 पृष्ठ 413।

पंजाब में एक मेहतर को शहर की गलियों में चलते समय अपने हाथ में या बगल के नीचे एक झाड़ू उठाना पड़ता था ताकि लोग जान जाएं कि वह सफाई कर्मचारी है।[4]

बम्बई में अछूत साफ या बिना फटे कपड़े नहीं पहन सकते थें वास्तव में दुकानदार किसी अछूत को कपड़ा बेचने से पहले एहतियात के तौर पर उसे फाड़ देते थे और उस पर धब्बा लगा देते थे।

मालबार में अछूतों को एक मंजिल से ऊँचे मकान बनाने की आज्ञा नहीं थी[1] और वे अपने मुर्दों को दफना भी नहीं सकते थे।[2]

मालाबार में अछूतों को छाता ओड़ने, जूते या सोने के आभूषण पहनने, गाय का दूध निकालने या देश की साधारण भाषा का प्रयोग करने की इजाजत नहीं थी।[3]

दक्षिण भारत में अछूतों को अपने बदन का कमर के ऊपर का भाग ढकने की जानबूझकर मनाही थी और अछूत महिलाओं के मामले में उनको कमर के ऊपर का भाग नंगा रखने के लिए मजबूर किया जाता था।[4]

बम्बई प्रेसीडेन्सी में सुनार जैसी ऊँची जाति के लोगों को मोड़कर धोती पहनने से रोका जाता था[5] और वे अभिवादन के लिए नमस्कार शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते थे।[6]

मराठा शासन काल के दौरान ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति वेद मंत्रों का उच्चारण करता था तो उसकी जीभ काटी जा सकती थी। पेशवाकाल में अनेक सुनारों की जीभ काटी गई थी क्योंकि उन्होंने कानून के विरुद्ध वेदों का उच्चारण करने का साहस किया था।

भारत में कहीं भी ब्राह्मण को मृत्यु-दण्ड नहीं दिया जाता था। वह हत्या भी कर देता था तो भी उसे फाँसी नहीं दी जा सकती थी।

---

1. भट्टाचार्य: हिंदू वर्ग पृ. 259 ।
2. मद्रास जनगणना 1891, पृ. 299 ।
3. भट्टाचार्य: हिंदू जातियाँ, पृ. 259 ।
4. मद्रास जनगणना 1891, पृ. 224 ।
5. ब्राह्मण ही केवल धोती मोड़कर पहन सकते थे शूद्र नहीं
6. जी. बी. फारेस्ट, आफिसियल राइटिंग ऑफ मांउटस्टुअर्ट एल्फिनस्टेन 1884 पृ., 310-11।

पेशवाओं के शासनकाल में जाति के आधार पर अपराधियों को दण्ड दिया जाता था। कठिन परिश्रम और मृत्यु की सजा अक्सर अछूतों को दी जाती थी।[1]

पेशवाओं के शासनकाल में ब्राह्मण लिपिकों को अपने सामान पर कतिपय शुल्क नहीं देने पड़ते थे और उनका आयातित अनाज बिना किसी परिवहन-शुल्क के उनके घर पहुँचाया जाता था; ब्राह्मण जमींदारों को अन्य वर्गों से मिलने वाली लगान अपेक्षा अपनी जमीन का कम दर पर लगान देना पड़ता था। बंगाल में जमीन की लगान हर जाति के मामले में अलग-अलग थी और यदि काश्तकार अछूत होता था तो उसे सबसे अधिक लगान देना पड़ता था।[2]

इन तथ्यों से स्पष्ट हो जाता है कि मनु यद्यपि ईसा पूर्व या ईसा के कुछ समय बाद पैदा हुआ था, अभी भी मरा नहीं है और हिन्दू राजाओं के शासनकाल में हिन्दू एवं हिन्दू तथा छूत और अछूत के बीच मनु के कानून के आधार पर न्याय होता था और वह कानून स्पष्ट-रूप से असमानता पर आधारित था।

III

यह मनु द्वारा प्रतिपादित धर्म है। उसे मानव धर्म कहा जाता है अर्थात् धर्म जो अपनी अन्तर्निहित उत्तमता के कारण सभी मनुष्यों पर, सभी कालों में और सभी स्थानों पर लागू होता है। इस धर्म की भारत के बाहर कोई मान्यता थी, अथवा यह एक अभिशाप था, इस तथ्य की जाँच का काम मैं बंद नहीं करूंगा। यह उल्लेखनीय है कि यह मानव धर्म इस सिद्धांत पर आधारित है कि ब्राह्मण को सभी अधिकार प्रापत हैं और शूद्रों को मनुष्य होने का भी अधिकार प्राप्त नहीं है, ब्राह्मण हर चीज में सभी व्यक्तियों से मात्र इसलिए ऊपर होगा कि उसका जन्म उच्च-जाति में हुआ है एवं शूद्र सभी लोगों से नीचे होगा, और उसे कुछ नहीं मिलेगा चाहे वह कितना ही योग्य हो। यह मानव धम्र बहुत ही निर्लज्ज और हास्यास्पद है और बेहतर यह होगा कि इसे उलट-पुलट दिया जाए। जहाँ तक मैं जानता हूँ इस सम्बन्ध में डॉ. आर.पी. परांजपे ने जो एक महान शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ और समाज-सुधारक थे, सबसे अधिक सराहनीय प्रयास किया है और मुझे उनके शब्दों को पूर्णतया उद्धृत करने में कोई खेद नहीं है।

---

1. *भट्टाचार्या पृष्ठ-259*
2. *मद्रास जनगणना 1891 पृष्ठ-299*

निम्नलिखित पत्र से ज्ञात हो जाएगा कि मनु का कानून देश का कानून था, या नहीं।

"सेवा में,

दामुलसेट त्रिम्बकसेर

सुनारों की जाति के मुखिया,

"सभा के आदरणीय अध्यक्ष सुनार जाति के लिए उचित समझ कर नमस्कार करने के तरीकों को रोकने के लिए आपको पहले ही इस प्रस्तावित आदेश की जानकारी दी जाती है कि आप संपूर्ण जातति की चिंता करें और सख्ती से मानें।

बम्बई महल आदेश से

9 अगस्त, 1979 ह.–डबलू पेज

सराकार का सचिव

सरकार का प्रस्ताव

ता. 28 जुलाई, 1979

"कुछ समय से छोटे–छोटे झगड़े सुनार व ब्राह्मणों के बीच "नमस्कार" शब्द को लेकर हो रहे हैं कि बाद वाले नमस्कार का प्रयोग करते हैं, और ब्राह्मणों का आरोप है कि ऐसा करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है एवं इस उत्सव का सुनारों द्वारा मनाना महान जैन्टू (हिंदू) के अधिकारों का उल्लंघन है, इस बारे में हमको ब्राह्मणों की लगातार शिकायतें प्राप्त हो रही हैं तथा पेशवा ने भी अनेक बार अनुरोध करते हुए अध्यक्ष को लिखा है कि वे सुनारों को इस शब्द का इस्तेमाल करने से रोकें। उनके अनुसार, इस मामले का निर्णय हमारे द्वारा होना चाहिए जिससे दो जातियों के बीच के झगड़े को हमेशा के लिए समाप्त किया जा सके, और ब्राह्मणों के पास शिकायतों के कारण हैं कि सुनाारें को 'नमस्कार' शब्द का उपयोग करने से रोका जाए, इसमें कम्पनी की कोई रुचि नहीं है, हमारा प्रस्ताव पेशवा के चरणों में रखा जाए कि वह हमारे प्रस्ताव की जानकारी अध्यक्ष को करा दें।"

भविष्य की झांकी[1]

यह रचना गैर-ब्राह्मण दलों के विरुद्ध लिखी गई थी जो उस समय बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सी में तथा मध्य-प्रान्तों में सत्ता में थे। गैर-ब्राह्मण दल इस उद्देश्य से स्थापित किए गए थे कि राज्य-सेवा में किसी एक समुदाय का एकाधिकार न हो। ब्राह्मणों का भारत के सभी प्रान्तों की राज्य-सेवाओं में और राज्य के सभी विभागों में प्रायः पूरा एकाधिकार था। इसलिए गैर-ब्राह्मण दलों ने साम्प्रदायिक अनुपात का सिद्धांत बनाया जिसके अनुसार सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्तियायाँ करने के मामले में न्यूनतम योग्यताएं होने पर ब्राह्मण उम्मीदवारो की तुलना में गैर-ब्राह्मण समुदायों के उम्मीदवारों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मेरे विचार से इस सिद्धान्त में कोई बुराई नहीं थी। यह निश्चित रूप से गलत था कि देश का प्रशासन एक समुदाय के हाथों में हो चाहे वह समुदाय कितना ही बुद्धिमान क्यों न हो।

गैर-ब्राह्मण पार्टी का विचार था कि अच्छी सरकार कार्यरूप में सक्षम सरकार से बेहतर होने का सिद्धान्त केवल विधानसभाओं और कार्यपालिका के गठन के मामले में ही लागू नहीं किया जाना चाहिए, अपितु इसे प्रशासन के क्षेत्र में भी लागू होना चाहिए। प्रशासन के माध्यम से ही राज्य आम जनता के सम्पर्क में सीधे आती है। कोई प्रशासन अच्छा नहीं हो सकता यदि वह सहृदय नहीं है। कोई प्रशासन सहृदय नहीं होगा यदि उसमें केवल ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण जो आम जनता से अपने को उच्च समझता है, दूसरों को निम्न-जाति और शूद्र समझकर उनकी उपेक्षा करता है, उनकी आकांक्षाओं का विरोध करता है, सहज-ज्ञान से वह अपने समुदाय का पक्ष लेता है, आम लोगों में कोई दिलचस्पी नहीं लेता है और भ्रष्ट है, कैसे अच्छा प्रशासक हो सकता है। वह भारत की आम-जनता के लिए उतना ही पराया है जितना कि कोई विदेशी। इसके विरुद्ध ब्राह्मण केवल कार्य क्षमता पर बल देते रहे हैं। वे जानते हैं कि यह एक ताश का पत्ता है जिसे शिक्षा की दृष्टि से आगे होने के कारण वे सफलतापूर्वक खेल सकते हैं। लेकिन वे भूल जाते हैं कि यदि कार्य-क्षमता ही एकमात्र मापदण्ड है तो जिस तरह और जिस हद तक उन्होंने राज्य-सेवा पर एकाधिकार कर लिया है, संभवतया न कर पाते। यदि कार्यक्षमता ही एकमात्र मानदण्ड है तो भारत के ब्राह्मणों के बजाए अंग्रेजी, फ्रांसीसियों, जर्मनी के लोगों और तुर्कों को निवेजित करने में क्या बुराई थी। जो भी हो, गैर-ब्राह्मण पार्टियों ने कार्यक्षमता के महत्त्व को इन्कार कर दिया और इस बात पर बल दिया कि सार्वजनिक

---

1. *गुजराती पंच, मई 1921 से दुबारा छापना (पांडुलिपि में छपा नहीं है-सम्पादक)*

सेवाओं में साम्प्रदायिक अनुपात का सिद्धांत लागू किया जाए ताकि प्रशासन में सभी जातियों और धर्मों के लोगों को अवसर मिले और इस प्रकार एक अच्छी सरकार बने। इस सिद्धान्त को लागू करने में गैर-ब्राह्मण पार्टियों ने प्रशासन में ब्राह्मणों के प्रभाव को कम करने की उत्सुकता में वह प्रायः भूल जाते थे कि लोक-सेवाओं में ब्राह्मणों और गैर-ब्राह्मणों में संतुलन लाने में न्यूनतम कार्यक्षमता का नियम एक बाधा है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि उन्होंने अपने मार्गदर्शन के लिए जो नियम अपनाया, वह आम लोगों के हित में प्रशंसनीय नहीं था।

निस्संदेह इस नीति से कई ब्राह्मण काफी उत्तेजित हुए। डॉ. परांजपे की यह रचना गैर-ब्राह्मण दल की नीति पर एक बहुत ही उत्तम व्यंग्य है। यह गैर-ब्राह्मण दल के सिद्धान्त का अद्वितीय व्यंग्य-चित्र है और मुझे मालूम है, बहुत से गैर-ब्राह्मण नेता इसके प्रकाशित होने पर क्रोधोन्मत ही नहीं हुए बल्कि हक्के-बक्के रह गए। डॉ. परांजपे से मेरी शिकायत यह है कि उन्होंने इसके विनोद को नहीं समझा। गैर-ब्राह्मण पार्टी कुछ नया नहीं कर रही थी। वह केवल मनुस्मृति को उल्टा पलट रही थी। वह मेजों को उलटा कर रही थी। गैर -ब्राह्मण पार्टी कुछ नया नहीं कर रही थी। वह ब्राह्मणों को उस स्थिति में ला रही थी जिसमें मनु ने शूद्रों को रखा था। क्या मनु ने केवल ब्राह्मणों को विशेषाधिकार इसलिए दिया था क्योंकि वह स्वयं ब्राह्मण था। क्या मनु ने केवल शूद्रों को हर प्रकार के अधिकारों से वंचित नहीं रखा, यद्यपि कि वह इसका हकदार था। यदि अब शूद्र को शूद्र होने के नाते कोई विशेष अधिकार दे दिए जाएं तो क्या उसके विरुद्ध कोई शिकायत हो सकती है? यह हास्यास्पद लगेगा लेकिन इस नियम का पूर्वोदाहरण है और उसका एक पूर्वोदाहरण मनुस्मृति ही है। और गैर-ब्राह्मण पार्टी पर कौन पत्थर फैंक सकता है? ब्राह्मण फैंक सकते हैं यदि उन्होंने कोई पाप नहीं किया है। लेकिन क्या लेखक और पुजारी, मनुस्मृति के समर्थक, यह दावा कर सकते हैं कि उन्होंने कोई पाप नहीं किया है? डॉ. परांजपे की रचना मानव धर्म में निहित असमानता का एक बहुत ही उत्तम निन्दा-प्रस्ताव है। इससे बड़े अनुपम ढंग से स्पष्ट हो जाता है कि एक ब्राह्मण को एक शूद्र की स्थिति में रख दिया जाए तो वह कैसा महसूस करेगा।

असमानता हिन्दुओं में ही नहीं है। यह अन्य जगह भी पाई जाती थी और समाज को उच्च व नीच, स्वतन्त्र और दास वर्गों में विभाजित करने के लिए जिम्मेदार थी।

(पांडुलिपि में अधूरा छोड़ दिया गया - सम्पादक)

5
सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखना

(ये डॉ. अम्बेडकर की पांडुलिपि के चार हस्तलिखित पृष्ठ हैं और इनके बीच-बीच में टाइप हुए धर्म ग्रंथों के उद्धरण हैं। पहले पृष्ठ पर 56 अंक अंकित है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि इससे पहले का भाग उपलब्ध नहीं है। बाद का भाग भी गायब है। शीर्षक सुझाया गया है - संपादक)

XII-100: "सेनाओं पर कमान, राजसी प्रभुत्व, सजा देने की शक्ति और सभी राष्ट्रों पर प्रभुसत्ता सम्पन्न प्रभुतव का अधिकारी केवल वही हो सकता है जो वेद-शास्त्र को पूरी तरह समझता है। (अर्थात् जो ब्राह्मण है)- मनुस्मृति

स्थापित व्यवस्था को बनाए रखने तथा सुरक्षित रखने का दूसरा तरीका पहले से बिल्कुल भिन्न है। वास्तव में यह हिन्दू सामाजिक व्यवस्था का एक विशेष अंग है।

उग्र हमलों से सामाजिक व्यवस्था की रक्षा करने के लिए तीन बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है। क्रांति का प्रादुर्भाव तीन कारणों से होता है। (1) बुरी भावनाओं का होना, (2) यह जानने की क्षमता का होना कि कोई गलतियों का शिकार है, तथा (3) हथियारों का मिलना। दूसरा विचार यह है कि एक विद्रोह से निपटने के दो तरीके हैं। एक यह कि विद्रोह को होने से रोकना और दूसरा यह है कि विद्रोह होने पर उसे दबाना। तीसरा विचार है कि क्या विद्रोह को रोकना संभव होगा या क्या विद्रोह को दबाना ही एकमात्र रास्ता है, यह उन नियमों पर निर्भर करेगा जो विद्रोह की पूर्वापेक्षाओं को प्रभावित करते हैं।

यदि सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि उसमें किसी को उन्नति करने, शिक्षा प्राप्त करने और हथियारों का प्रयोग करने का अधिकार नहीं है तो सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह को रोका जा सकता है। दूसरी ओर, यदि सामाजिक व्यवस्था ऐसी है कि वह उन्नति करने, शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा देती है और हथियारों के प्रयोग करने का अवसर देती है तो जिन लोगों के प्रति अन्याय होता है उनके द्वारा विद्रोह को नहीं रोका जा सकता। इसका एकमात्र उपाय यह है कि बलप्रयोग और हिंसा द्वारा विद्रोह का

दमन करके सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखा जाए। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था ने पहले तरीके को अपनाया है। इसमें निम्न वर्गों की आने वाली सभी पीढ़ियों के लिए सामाजिक स्थिति निश्चित की गई है। उनकी आर्थिक-स्थिति भी निश्चित कर दी गई है। दोनों के बीच विषमता न होने के कारण किसी शिकायत के पैदा होने की संभावना नहीं है। इसमें निम्न वर्गों को शिक्षा का अधिकार नहीं दिया गया है। परिणामतः कोई नहीं जातना कि उसकी निम्न-स्थिति उसके दुःख का कारण है। यदि कोई जागरूकता है तो यह कि उसकी निम्न-स्थिति के लिए कोई जिम्मेदार नहीं है। यह भाग्य का परिणाम

है। मान लिया जाए कि कोई शिकायत है, मान लिया जाए कि शिकायत के प्रति जागरूकता है तो हिन्दू सामाजिक व्यवस्था के विरुद्ध निम्न वर्गों द्वारा कोई विद्रोह नहीं किया जा सकता क्योंकि हिन्दू सामाजिक व्यवस्था जन-साधारण को हथियारों का उपयोग करने का अधिकार नहीं देती। सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार के उपयोग में उल्टी दिशा लेते हैं। वे सबको बराबर का अवसर देते हैं। वे सबको ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्रता देते हैं। वे हथियारों के इस्तेमाल करने की इजाजत देते हैं, और उपद्रवों तथा हिंसा को दबाने का कलंक अपने ऊपर लेते हैं। अवसर की स्वतंत्रता न देना, ज्ञान प्राप्त करने की स्वतंत्रता न देना, हथियार रखने का अधिकार न देना बहुत ही क्रूर अन्याय है। इसका परिणाम उसको एवं व्यक्ति। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था इसके लिए शर्मिंदा नहीं है। तथापि इसमें दो उपलब्धियाँ हुई हैं। यद्यपि सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने का यह बहुत ही बेशर्म तरीका है तथापि यह बहुत ही प्रभावकारी है। दूसरे इस तथ्य के बावजूद कि पुरुषत्व की हत्या करने के लिए बहुत ही अमानवीय तरीकों का प्रयोग किया जाता है, इससे हिन्दुओं को बहुत ही सहृदय होने की ख्याति मिली है।

हिन्दू सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने के लिए इसकी विशेष लक्षण से सम्बन्धित तकनीक है। तकनीक दो तरह की है :- पहली तकनीक सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने की जिम्मेदारी राजा के कंधों पर डालना है। मनु ने यह स्पष्ट शब्दों में कहा है-

VIII-410 "राजा को व्यापारी वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को व्यापार करने या ऋण देने या खेती करने और पशुओं की देखभाल करने का आदेश देना चाहिए; और दास वर्ग के प्रत्येक व्यक्ति को द्विजों की सेवा करने का आदेश देना चाहिए।"

VIII-418 "राजा को बड़ी सजगता से व्यापारियों और मिस्त्रियों को अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करने के लिए बाध्य करना चाहिए; क्योंकि जब ऐसे आदमी अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो जाते हैं तो यह संसार उलझन में पड़ जाता है।"

मनु ने इस संबंध में राजा के कर्त्तव्यों का विवरण ही नहीं किया है। उसने... निश्चित करने के लिए कि राजा हर समय स्थापित व्यवस्था को स्थापित करने और बनाए रखने

के लिए हर समय अपने कर्त्तव्य का पालन करेगा। इसलिए मनु ने दो अन्य प्रावधान किए हैं। एक प्रावधान यह है कि यदि राजा सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने में असफल होता है तो यह एक अपराध होगा जिसके लिए साधारण आदमी की भाँति राजा पर मुकदमा चलाया जा सकेगा और उसे दंड दिया जा सकेगा। मनु के निम्न उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है-

VIII-335 "राजा न पिता, न गुरु, न मित्र, न माता, न पत्नी, न पुत्र, न घरेलू पुजारी को बिना सजा के छोड़ेगा, यदि वे अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह ठीक-ठीक नहीं करते।"

VIII-336 "जहां नीच-जाति के आदमी पर एक रुपया जुर्माना होगा, वहीं राजा पर एक हजार रुपया जुर्माना होगा और वह जुर्माना पुजारी को देगा या उसे नदी में डालेगा, यह पवित्र नियम है।"

मनु ने राजा के विरुद्ध उसके लापरवाह होने या सामाजिक व्यवस्था का विरोध करने पर दूसरा यह प्रावधान किया था कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को उसके विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह करने का अधिकार होगा।

VIII-348 "द्विज हथियार उठा सकते हैं जब उनके कर्त्तव्यों में बलपूर्वक रुकावट डाली जाती है, और जब कुछ बुरे-समय में द्विजों पर महाविपदा पड़ी हो।"

(पांडुलिपि में अधूरा छोड़ा गया - संपादक)

6

हिन्दुओं के साथ

(हस्तलिखित पांडुलिपि से उद्धत–संपादक)

यह विश्वास करना असंभव है कि हिन्दू अपने समाज में अछूतों को कभी आत्मसात कर सकेंगे। उनकी जाति–प्रथा और धर्म ऐसी आशा पर पूरी तरह पानी फेर देते हैं। फिर भी अछूतों की अपेक्षा हिन्दुओं में ऐसे असुधार्य आशावादी अधिक हैं जो यह विश्वास करते हैं कि हिन्दू अछूतों को अपने में आत्मसात कर लेंगे। इन असुधार्य आशावादियों ने सच्चे मन से राय दी है या नहीं यह एक ऐसा प्रश्न है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कितने समय में यह आत्मसात होगा यह बताने में वे असमर्थ हैं। मान लीजिए कि आशावादी सच्चे हैं तो फिर प्रश्न ही नहीं उठता कि आत्मसात की यह प्रक्रिया लंबी होगी और कई शताब्दियों तक चलेगी। इस दौरान अछूतों को हिन्दुओं के सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रण में रहना पड़ेगा और उन्हें वे सभी अत्याचार और जुल्म सहन करने होंगे जो वे पहले सहन करते रहे हैं। स्पष्ट है कि कोई समझदार व्यक्ति अछूतों को हिन्दुओं की इच्छा एवं प्रसन्नता पर इस आशा में नहीं छोड़ सकता कि वे अकथ्य भविष्य में उनको अपने में आत्मसात कर लेंगे। जल्दी या देर में संक्रांति काल आएगा और हिन्दुओं द्वारा उनके विरुद्ध अत्याचार तथा दमन के खिलाफ कुछ प्रावधान अवश्य किया जाना चाहिए। इस संबंध में क्या प्रावधान किए जाएँ। यदि यह प्रश्न अछूतों पर छोड़ दिया जाता है तो वे दो प्रावधान करने के लिए कहेंगे – एक संवैधानिक सुरक्षा और दूसरा पृथक उपनिवेश के लिए।

I

अछूतों की रक्षा के लिए जो संवैधानिक सुरक्षा के उपाय किए जाएं वे किस प्रकार के हों, इस संबंध में अखिल भारतीय अनुसूचित जाति संघ ने, जो भारत के अछूतों का एक राजनैतिक संगठन है, संकल्पों के रूप में कुछ सुझाव दिए हैं। संकल्प संख्या तीन और सात, जिनमें इनको परिभाषित किया गया है, नीचे दिए गए हैं।

संकल्प सं. – 3

उद्धरण (पृष्ठ 359)

(पांडुलिपि में नहीं लिखा है – संपादक)

संकल्प सं. – 7 (पृष्ठ 361)

(पांडुलिपि में नहीं लिखा है – संपादक)

हिन्दू अछतों के लिए ऐसी सुरक्षा देने के लिए तैयार नहीं हैं। एतराज सामान्य है। हिन्दुओं को विशेष सुरक्षा देने में भी एतराज है। सामान्य आपत्ति यह है कि अछूत अल्पसंख्यक नहीं हैं। अतः, अन्य अल्पसंख्यकों को जो सुरक्षा दी जाती है वे उनके हकदार नहीं हैं। यह तर्क दिया जाता है कि धर्म के आधार पर ही किसी संप्रदाय को अल्पसंख्यक कहा जा सकता है। धर्म के मामले में अछूत हिन्दुओं से अलग नहीं हैं। इस कारण, वे अल्पसंख्यक नहीं हैं। अल्पसंख्यक के बारे में यह परिभाषा बचकाना है, यह बात उन सभी को स्पष्ट हो जाएगी जिन्होंने इस प्रश्न का अध्ययन किया है।

(अधूरा छोड़ा गया – संपादक)

7

कुंठा

इतिहास इस बात का गवाह है कि अछूत बहुत ही हतोत्साहित, बहुत ही घृणित और बहुत ही अभागे हैं। वे बहुत ही थके-माँदे और त्यक्त लोग हैं।

शैली की भाषा में "आकाश पर चढ़ाई की थकावट के कारण उनका रंग पीला पड़ गया है, उनकी आँखें पृथ्वी की ओर लगी हुई हैं और वे भिन्न प्रकार के सितारों के बीच अकेले घूम रहे हैं।"

साधारण भाषा में कहा जा सकता है कि अछूत कुंठा की भावना से ओत-प्रोत है। जैसा कि मैथ्यू आरनोल्ड ने कहा है: "जीवन अपने अस्तित्व की पुष्टि करने का प्रयास है, इसका अर्थ अपने अस्तित्व का पूरी तरह और निर्बाध रूप से विकास करना, पर्याप्त वायु और प्रकाश पाना, दूसरों को अपने ऊपर न होने देना (............)*। अपने अस्तित्व की पुष्टि न कर पाना कुंठा का दूसरा नाम है। इसका अर्थ अच्छे परिणाम दिखाने के प्रयासों का पूरा न होना, किसी की शक्तियों का शिथिल पड़ जाना और व्यक्तित्व को अचेत कर देना है।"

बहुत से लोग अपने जीवन में ऐसी कुंठाओं के शिकार होते हैं। लेकिन वे तुरंत ही अंधकार से निकल आते हैं और अपने कम्पन से पुनः यश प्राप्त करते हैं। अछूतों की स्थिति दूसरी है। उनके मामले में एक बार कुंठा से हमेशा के लिए कुंठा अभिप्रेत है। समय या स्थान से इसमें कोई अंतर नहीं पड़ता।

इस संबंध में अछूतों की कहानी यहूदियों की कहानी से बिल्कुल भिन्न है।

यहूदी लोगों को मिस्र में बंदी बनाया जाना उनके लिए पहली विपत्ति थी। जैसा कि बाईबल में कहा गया है –

---

1. *प्रजातंत्र संबंधी लेख।*

* *पांडुलिपि से हटा दिया गया – संपादक*

(बच्चों की बाइबिल - पृष्ठ 30) (उद्धरण नहीं दिया गया - संपादक)

अंततः मिश्र का राजा झुक गया। यहूदी लोग कैद होने से बच गए और कैन्मान चले गए जहाँ वे ऐसे प्रदेश में बस गए जिसमें दूध और मधु की भरमार थी।

यहूदियों के सामने दूसरी विपत्ति तब आई जब उन्हें बेबीलोनिया में बंदी बना लिया गया। (कुछ पृष्ठ गायब हैं - सम्पादक)

अब हम बता सकते हैं कि अछूत कुंठा से क्यों पीड़ित हैं। उनके शरीर व दिमाग की हालत बहुत अच्छी नहीं है। उन्हें अपना भूतकाल भी नीरस लग रहा है और उसके आधार पर वे यह आशा नहीं कर सकते कि उनका भविष्य उज्ज्वल होगा और वे उत्थान कर सकेंगे। इसमें उनका कोई दोष नहीं है। उनके नसीब में जो कुंठा आई है उसका कारण हिन्दू सामाजिक-व्यवस्था से उतपन्न प्रतिकूल सामाजिक वातावरण है जो उनकी प्रगति के लिए पूर्णतया प्रतिकूल है। नसीब उनका पूर्णतया असहनीय है।

(टिप्पणी पेज 201) (उद्धरण नहीं दिया गया - सम्पादक)

जैसा कि कार्लाइल ने कहा है - ''कुछ लोग हिन्दू सामाजिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकने के लिए क्रांति यहाँ तक कि खूनी क्रांति की बात सोच रहे हैं। सभी यही कह रहे हैं जो कभी काबली विलियम्स ने कहा था-वे ऐसे ही तीव्र कुंठा से ग्रस्त हैं।''

(टिप्पणी पृष्ठ 152) (उद्धरण नहीं दिया गया - सम्पादक)

III

एमर्सन की भाषा में भगवान के साथ प्रसंविदा का अर्थ तन-मन की अच्छी स्थिति से लगाया जा सकता है। जैसा कि एमर्सन ने कहा है, "सफलता तन और मन की अच्छी दशा पर, कार्य की शक्ति-साहस पर निर्भर है। सफलता तभी मिलती है जब कोई ठोस शक्ति हो: एक आँस शक्ति एक आँस वजन के बराबार होनी चाहिए।"

यहूदी पहली बार बंदी बनाए जाने के बाद उन्नति कर सके तो इसका मुख्य कारण उनके तन और मन की हालत अच्छी होना था। तन और मन की अच्छी हालत दो स्रोतों से होती है। यह भगवान पर विश्वास करने से हो सकती है। यदि कुछ भी नहीं तो कम से कम भगवान शक्ति का एक स्रोत है एवं आपतकाल में व्यक्ति को मानसिक-शक्ति की, तन और मन की अच्छी स्थिति की आवश्यकता होती है, जो सफलता के लिए आवश्यक है। अतः यदि ठीक अर्थ लगाया जाए तो इस सुझाव में कोई बुराई नहीं है कि यहूदी भगवान के साथ अपने प्रसंविदा के कारण सफल हुए।

IV

तन और मन की हालत अच्छी तभी हो सकती है जब सामाजिक वातावरण अच्छा हो। जिस समाज में कोई प्रतिबंध नहीं है, कोई रुकावट नहीं है, जिस समाज में व्यक्ति को न केवल निर्वाह के साधनों अपितु तंदुरुस्त रहने का भी अधिकार है, जहाँ किसी व्यक्ति को इतना परिश्रम नहीं करना पड़ता कि दूसरे पास सुख-साधनों की भरमार हो, जहाँ किसी व्यक्ति को अपनी क्षमताओं और शक्तियों का विकास करने के अधिकार से वंचित नहीं रखा जाता है ताकि वे अपनों के साथ प्रतियोगिता न कर सकें, जहाँ परिश्रम करने वाले को इनाम मिलता है, जहाँ सभी के प्रति सद्भावना है।

(आगे का भाग हटा दिया गया है क्योंकि वह पढ़ने लायक नहीं था - सम्पादक)

(ऊपर का भाग डॉ. अम्बेडकर की हस्तलिपि में है और सभी भाग अलग-अलग पृष्ठों पर लिखे गए हैं-संपादक)

8

राजनीतिक दमन की समस्या*

भारत में राजनैतिक स्वतंत्रता के सिद्धांत को मंदगति से एवं धीरे-धीरे लागू किया गया है। इसका आरंभ 1892 में हुआ जब विधानसभाओं के विधान में लोक-प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त को लगू किया गया। इसे 1909 में विस्तारित किया गया। 1909 में लागू लोक-प्रतिनिधित्व में दो कमियाँ थीं। पहली कमी यह थी कि मताधिकार बहुत ऊँचे लोगों को प्राप्त था। यह इतने ऊँचे लोगों को प्राप्त था कि बड़ी संख्या में लोग इससे वंचित थे। जिन लोगों को यह अधिकार प्राप्त था वे हिन्दू और मुसलमान अभिजात गर्व के लोग थे। दूसरी कमी यह थी कि लोक-प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त विधानसभाओं तक सीमित था। यह कार्यपालिका के मामले में लागू नहीं होता था। कार्यपालिका का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहा। विधानमंडल इसे न तो बना सकता था और न ही समाप्त कर सकता था। इसे फिर 1919 में लिया गया। बड़ी विचित्र बात है कि 1919 में लोक-प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त कार्यपालिका पर लागू करते समय इसे विधानसभा के अनुपात में नहीं लागू किया गया। इसका कारण यह था कि भारत में राजनैतिक आंदोलन का नेतृत्व अधिकतर उच्च वर्गों के लोग कर रहे थे। उनकी दिलचस्पी मताधिकार का विस्तार करने की अपेक्षा कार्यपालिका की शक्ति में अधिक रही है। यह स्वाभाविक है। उनको कार्यपालिका की शक्ति से फायदा था जबकि आम जनता को माताधिकार मिलने से फायदा था।

उच्च वर्गों की अँग्रेज अधिकारियों तक पहुंच होने के कारण उन्होंने उन पर कार्यपालिका शक्ति के लिए दबाव डाला और मताधिकार प्राप्त किए बिना इसे प्राप्त करने में सफल हो गए।

---

* *यह डॉ. अम्बेडकर की छह पृष्ठों की हस्तलिखित पांडुलिपि है और यह हिन्दू सामाजिक व्यवस्था योजना का तेरहवाँ अध्याय है। अंतिम वाक्य से ऐसा प्रतीत होता है कि इस अध्याय को अधूरा छोड़ दिया गया है - संपादक।*

मताधिकार निस्संदेह 1909 में निश्चित समय के बहुत बाद दिया गया। लेकिन अछूतों को यह अधिकार नहीं दिया गया। निस्संदेह वे इतने गरीब हैं कि केवल व्यस्क मताधिकार का प्रावधान होने से ही अछूतों के नाम मतदाता सूचियों में आ सकते हैं।

भारत सरकार बहुत बेचैन हुई। उसका इसमें ज्यादा दखल नहीं था। लेकिन भारत सरकार ने अछूतों को चुनाव में मत देने का अधिकार दिए बिना उच्च-जातीय हिन्दुओं के राजनैतिक प्रभुत्व में उनको रखने के बारे में जरूर उत्सुकता व्यक्त की। दिनांक 19 मार्च 1919 के अपने पत्र में भारत सरकार ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

(i) सांप्रदायिक निर्णय नामक ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तावित (उद्धरण) योजना के अंतर्गत 1935 में स्थिति में परिवर्तन आया।

अछूतों को विभेदी मताधिकार दिया गया, जिसके अंतर्गत 10 प्रतिशत अछूत मतदान कर सकते थे।

(ii) अछूतों को विभेदी मताधिकार ही नहीं दिया गया अपितु उनके लिए प्रांतीय और केंद्रीय विधानमंडल में कुछ स्थान भी आरक्षित किए गए।

(iii) आरक्षित स्थानों को अछूत समुदाय के मतदाताओं के पृथक निर्वाचक-मंडलों द्वारा भरा जाना था।

(iv) पृथक निर्वाचन-मंडलों में मत देने का अधिकार प्राप्त होने के अलावा अछूत आम चुनावों में उन स्थानों के लिए भी दूसरा या अतिरिक्त मत दे सकते थे, जिन पर अछूतों को छोड़कर अन्य हिन्दू खड़े हो सकते थे।

गांधी महोदय ने, जो अछूतों को अलग प्रतिनिधित्व देने का विरोध कर रहे थे, ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव का विरोध किया और धमकी दी कि यदि इन रियायतों को वापस नहीं लिया गया तो वह आमरण अनशन करेंगे। गांधी महोदय मुख्य रूप से पृथक निर्वाचन-मंडलों का विरोध कर रहे थे और ब्रिटिश सरकार ने तब तक अपने प्रस्ताव वापस लेने से इंकार कर दिया जब तक कि अछूतों और हिन्दुओं में समझौता नहीं हो जाता। ऐसी स्थिति में गांधी महोदय ने अपना अनशन आरम्भ कर दिया। अंततः, सितम्बर 1932 में हिन्दुओं और अछूतों के बीच एक समझौता हुआ। वह समझौता पूना समझौता के नाम से विख्यात है। इसकी शर्तें निम्नलिखित हैं:

---

1. *25 सितम्बर, 1932 को हस्ताक्षरित।*

पूना समझौता*

(1) प्रांतीय विधानमंडलों के सामान्य निर्वाचक-मंडल स्थानों में से पद दलित वर्गों के लिए स्थानों का आरक्षण इस प्रकार होगाः-

मद्रास-30; बम्बई और सिंध-15; पंजाब-8; बिहार एवं उड़ीसा-18; मध्य प्रांत-20; आसाम-7; संयुक्त प्रांत-20 कुल-148

ये आंकड़े प्रधानमंत्री के फैसले में घोषित प्रांतों की सभाओं की कुल संख्या पर आधारित हैं।

(2) इन स्थानों के लिए चुनाव निम्नलिखित प्रक्रिया के अध्याधीन संयुक्त निर्वाचन मंडलों द्वारा किया जाएगाः-

एक चुनाव क्षेत्र की सामान्य मतदाता सूची में पंजीकृत पद दलित वर्गों के सभी सदस्य एक इलेक्ट्रोरल कॉलेज बनाएंगे जो ऐसे प्रत्येक आरक्षित स्थान के लिए पद-दलित वर्गों के चार उम्मीदवारों का एकल मत के आधार पर निर्वाचन करेंगे, ऐसे प्राथमिक निर्वाचन में अधिकतम मत प्राप्त करने वाले चार व्यक्ति सामान्य निर्वाचन-मंडल द्वारा निर्वाचन के लिए उम्मीदवार होंगे।

(3) इसी प्रकार केंद्रीय विधानमंडल में पददलित वर्गों का प्रतिनिधित्व संयुक्त निर्वाचन - मंडलों के सिद्धांत के अनुसार किया जाएगा और आरक्षित स्थान प्रांतीय विधानमंडलों की भांति प्राथमिक निर्वाचन पद्धति द्वारा भरे जाएंगे जैसा कि ऊपर खंड 2 में प्रावधान किया गया है।

(4) केंद्रीय विधान-मंडलों में ब्रिटिश भारत के सामान्य मतदाताओं के लिए निर्धारित स्थानों में से 18 प्रतिशत स्थान पद्दलित वर्गों के लिए आरक्षित किए जाएंगे।

(5) केंद्रीय और प्रांतीय विधानमंडलों के लिए उम्मीदवारों का चुनाव करने की प्राथमिक निर्वाचन-पद्धति, जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, नीचे दिए गए खंड-6 के प्रावधान के अनुसार आपसी समझौते के आधार पर जल्दी समाप्त नहीं की जाती तो पहले दस वर्षों के पश्चात् समाप्त हो जाएगी।

(6) जैसा कि खंड 1 और खंड 5 में प्रावधान है, प्रांतीय और केंद्रीय विधान -मंडलों में स्थान आरक्षित करके पद्दलित वर्गों को प्रतिनिधित्व देने की पद्धति तब तक जारी रहेगी जब तक कि संबंधित समुदायों के बीच आपसी समझौते के आधार

पर अन्यथा निर्णय नहीं लिया जाता।

(7) पद्दलित वर्गों के लिए केंद्रीय और प्रांतीय विधानमंडलों में मताधिकार उसी प्रकार रहेगा जैसा कि लोथिया कमेटी की रिपोर्ट में कहा गया है।

(8) स्थानीय निकायों के चुनावों अथवा लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए इस आधार पर किसी को निर्योग्य नहीं ठहराया जाएगा कि वह पद्दलित वर्गों का सदस्य है। इसके संबंध में पद्दलित वर्गों को उचित प्रतिनिधित्व देने का पूरा प्रयास किया जाएगा, बशर्ते कि उनके पास लोक सेवाओं में नियुक्ति के लिए आवश्यक शैक्षिक योग्यताएँ हैं।

(9) हर प्रांत में शिक्षा अनुदान में से समुचित धनराशि पद्दलित वर्गों के सदस्यों को शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए रखी जाएगी।

यह समझौता अछूतों की राजनीतिक स्वतंत्रता का घोषणा-पत्र है।

प्रथम चुनाव......

(अधूरा छोड़ा गया है - संपादक)

9

बदतर क्या है - गुलामी या अस्पृश्यता?

[डॉ. अम्बेडकर ने इस पुस्तक माला के खंड 5 के अध्याय 3 और 8 अध्याय में 'समस्या के मूल कारण' - 'समानांतर मामले' शीर्षक के अंतर्गत गुलामी और अस्पृश्यता पर विचार किया है।

तथापि अब हमें एक पुस्तिका मिली है जिसमें कुछ पैराग्राफ हैं जिनको खंड 5 के अध्याय 3 और अध्याय 8 में स्थान नहीं मिला है।

यहाँ उद्वत सामग्री को एक साथ पढ़ने से तारतम्य बना रहता है और पाठ्य-सामग्री पूरी प्रतीत होती है।

सामग्री के सही होने में संदेह की भी कोई गुंजाइश नहीं रहती क्योंकि इस पुस्तिका का प्रकाशक श्री देवी दयाल 1943-47 में डॉ. अम्बेडकर के साथ रहा था। अध्याय के आरंभ में पुस्तिका में छपे शीर्षक की अनुलिपि इस बात का प्रमाण है कि यह अध्याय डॉ. अम्बेडकर ने लिखा है। "मानवता के विचार" तक पुस्तिका के इससे पहले के पैराग्राफ अर्थात् पृष्ठ 1 से 11, खंड 5 में पृष्ठ 80 से 88 पर पहले ही छप चुके हैं। श्री देवी दयाल के लिए इस लेख को प्रकाशित करने का श्रेय दिल्ली के श्री भगवान दास को जाता है। - संपादक]

भारत में गुलामी

दूसरे राष्ट्रों से श्रेष्ठ होने के जो दावे हिन्दू करते हैं उनमें से दो का उल्लेख नीचे किया गया है। उनका एक दावा यह है कि भारत में हिन्दुओं में दासता की प्रथा नहीं है और दूसरा दावा यह है कि छुआछूत निश्चित-रूप से दासता से बहुत कम हानिकारक है।

पहला बयान वास्तव में सच्चा नहीं है। दासता हिन्दुओं की एक बहुत पुरानी प्रथा है। मनु ने, जो कानून देने वाला है, यह बात स्वीकार की है और मनु के पदचिह्नों पर चलने वाले अन्य स्मृतिकारों ने इसे सविस्तार प्रतिपादित किया है और इसे व्यवस्थित किया है। दासता हिन्दुओं में कभी मात्र एक प्राचीन संस्था ही नहीं थी जो न केवल कुछ धुंधले विगत समय में थी। यह एक संस्था थी जो वर्ष 1843 तक पूरे भारत में निरंतर

अपनाई जाती रही और यदि ब्रिटिश सरकार ने इसे कानून बना कर उसी वर्ष समाप्त न किया होता तो यह आज तक बनी रहती। जब तक दासता चलती रही यह दोनों छूतों और अछूतों में विद्यमान थी। अछूत अपनी गरीबी के कारण छूतों की अपेक्षा गुलामी के अक्सर शिकार हुए। यही कारण है कि 1843 तक भारत में अछूतों को दोहरे बंधन का शिकार होना पड़ा – एक दासता का बंधन और दूसरा छुआछूत का बंधन। हल्के बंधन को काट दिया गया है और अछूत को इससे स्वतंत्र कर दिया गया है। लेकिन, क्योंकि अछूत आज दासता की जंजीर पहने दिखाई नहीं देते, यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे कभी दास नहीं रहे। ऐसा करने के लिए इतिहास के सभी पन्ने फाड़ने होंगे।

पहला दावा इतना बेतहाशा नहीं किया गया है। लेकिन दूसरा बहुत ही बेतहाशा दावा है। एक महान समाज-सुधारक और अछूतों के एक बड़े मित्र लाला लाजपत राय ने हिन्दू समाज पर सुश्री मेयो द्वारा लगाए गए अभियोग के उत्तर में ज़ोर देकर कहा कि दासता की तुलना में छुआछूत एक बहुत ही छोटी-सी बुराई है और उन्होंने अपने निष्कर्ष की पुष्टि करने के लिए अमरीका के नीग्रो की भारत के अछूत से तुलना की तथा यह सिद्ध कर दिया कि उनका निष्कर्ष सही है चूँकि यह लाला लाजपत राय का निष्कर्ष है, इस मामले पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

क्या छुआछूत दासता से कम हानिकारक है? क्या दासता छुआछूत से कम मानवीय थी? क्या दासता उन्नति के मार्ग में छुआछूत की अपेक्षा अधकि रुकावट डालती थी? लाला लाजपत राय द्वारा विवाद खड़ा किए जाने के बावजूद ये प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं और इन पर चर्चा रुचिकर तथा शिक्षाप्रद होगी। इस अंतर को समझने के लिए यह आवश्यक है कि चर्चा आरंभ करने से पहले दासता शब्द का अर्थ स्पष्ट कर दिया जाए। यह आवश्यक है क्योंकि दासता तो नहीं लेकिन दासता जैसे सामाजिक संबंधों को छिपाने के लिए दासता शब्द का लाक्षणिक प्रयोग किया जाता है चूँकि पत्नी पूर्णत: पति के अधि कार में होती थी, चूँकि वह कभी-कभी उसका दुरुपयोग करता था और उसकी हत्या कर देता था, चूँकि पति अपनी पत्नी दूसरे की पत्नी से बदल लेता था या किराए पर दे देता था और चूँकि वह उससे अपने लिए कार्य कराता था, पत्नी को कभी-कभी दास की संज्ञा दे दी जाती थी। इस शब्द के लाक्षणिक प्रयोग का एक और उदाहरण कृषि दास है। चूँकि कृषि दास निश्चित दिन काम करता था, निश्चित सेवाएं करता था, मालिक को निश्चित पैसा देता था और खेती-योग्य जमीन से जुड़ा हुआ था इसलिए उसे दास कहा जाता था। ये स्वतंत्रता कम करने के उदाहरण हैं और अधिकांशत: ये दासता जैसे हैं क्योंकि दासता में ही तो स्वतंत्रता समाप्त कर दी जाती है। लेकिन कानून में इस शब्द का प्रयोग इस भाव से नहीं लिया जाता है और परस्पर विरोधी तर्क देने के बजाए यह बेहतर होगा कि शब्द दासता के कानूनी अर्थ के आधार पर तुलना की जाए।

एक आम आदमी की भाषा में, जब एक व्यक्ति दूसरे की संपत्ति होता है तो उसे दास कहा जाता है। कम पढ़े व्यक्ति के लिए यह परिभाषा कुछ ज्यादा ही सारगर्भित है। इसे आगे स्पष्ट किए बिना वह इसका अर्थ पूरी तरह नहीं समझ पाएगा। संपत्ति का अर्थ कोई चीज है, इस शब्द से कुछ अधिकार अभिप्रेत हैं जो एक व्यक्ति के किसी चीज पर होते हैं जो उसकी संपत्ति है जैसे कि किसी वस्तु को अपने पास रखने का अधिकार, उसका उपभोग करने का अधिकार, उससे होने वाले लाभ का दावा करने का अधिकार, बिक्री के द्वारा स्थानांतरित करने का अधिकार, गिरवी रखने या पट्टे पर देने और उसे नष्ट करने का अधिकार। अतः स्वामित्व का अर्थ संपत्ति का पूर्ण प्रभुत्व है। स्पष्ट रूप से कहा जाए तो जब यह कहा जाता है कि दास मालिक की संपत्ति है तो इसका अर्थ यह होता है कि मालिक दास की इच्छा के विरुद्ध उससे कार्य ले सकता है, बिना उससे पूछे उसकी कमाई का लाभ प्राप्त कर सकता है। मालिक अपने दास की इच्छा जाने बिना उसे पट्टे पर दे सकता है, उसे बेच सकता है या उसे गिरवी रख सकता है और शब्द के कानूनी अर्थ के अनुसार मालिक उसे जान से मार सकता है। कानून की निगाह में दास एक वस्तु की भाँति है जिसका मालिक अपनी इच्छा के अनुसार लेन-देन कर सकता है।

इस कानूनी परिभाषा के अनुसार, दासता अस्पृश्यता से बदतर प्रतीत होती है। एक दास को बेचा जा सकता है, गिरवी रखा जा सकता है अथवा पट्टे पर दिया जा सकता है; एक अछूत को बेचा नहीं जा सकता, उसे गिरवी नहीं रखा जा सकता अथवा पट्टे पर नहीं दिया जा सकता। मालिक दास की हत्या करके भी दोषमुक्त हो सकता है; लेकिन एक अछूत नहीं हो सकता। जिसके कारण उसकी मृत्यु होगी वह उसकी हत्या के लिए जिम्मेदार होगा। वास्तव में, दास की हत्या करके दंड से नहीं बचा जा सकता। कानून उसकी मृत्यु को घातक हत्या मानता है जैसा कि एक स्वतंत्र व्यक्ति की मृत्यु के मामले में होता है। लेकिन कानून के अनुसार दास की स्थिति को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि दास की स्थिति अछूत से बदतर थी।

दास की परिभाषा करने का एक अन्य तरीका भी है जो समान रूप से कानूनी और संक्षिप्त है यद्यपि सामान्य तरीका नहीं है। दास की परिभाषा करने का दूसरा तरीका इस प्रकार है:- दास एक ऐसा मानव है जो कानून की निगाह में व्यक्ति नहीं है। दास की इस प्रकार परिभाषा करने से कुछ लोग सम्भवतः उलझन में पड़ सकते हैं। अतः यह बताना आवश्यक है कि कानून की दृष्टि में मनुष्य मानव शब्द के समान है। कानून में मानव हो सकते हैं किन्तु कानून उन्हें मनुष्य नहीं मानता। इसके विपरीत, कानून में मनुष्य हैं लेकिन वे मानव नहीं हैं। कानून व्यक्ति शब्द का जो अर्थ लगाता है उससे यही विलक्षण परिणाम निकलता है। कानून के प्रयोजनार्थ एक मनुष्य मानव अथवा गैर-मानव

जैसी इकाई की तरह है जिसमें कानून के अनुसार अधिकार प्राप्त करने और कर्त्तव्यों का निर्वहन करने की सामर्थ्य होती है। कानून की दृष्टि में दास मनुष्य नहीं है यद्यपि वह मानव है वह कानून की दृष्टि में एक मूर्ति मनुष्य है यद्यपि एक निर्जीव वस्तु है। इस अंतर का कारण स्पष्ट हो जाएगा। एक दास एक मनुष्य नहीं है यद्यपि वह एक मानव है क्योंकि कानून उसे अधिकारों और कर्त्तव्यों की सामर्थ्य रखने वाली इकाई नहीं मानता। संक्षेप में, एक मूर्ति एक मनुष्य है यद्यपि वह एक मानव नहीं है क्योंकि कानून अधिकारों और कर्त्तव्यों के सामर्थ्य को मानता है, कानून सही या गलत है, यह अलग प्रश्न है। एक मनुष्य के रूप में मान्यता प्राप्त करना एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथ्य है जिसके जबरदस्त परिणाम हो सकते हैं। इस विषय में क्या एक मनुष्य अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार होता है, वे अधिकार जो उसे उसकी मनुष्य रूप में मान्यता से प्राप्त होते हैं वे जीवन की तरह ही नहीं हैं अपितु जीवन की तरह महत्त्वपूर्ण हैं। उन अधि कारों में भौतिक वस्तुओं पर अधिकार, उनको प्राप्त करने, उनसे प्राप्त सुख एवं उनको बेचने के अधिकार आते हैं जिसे संपत्ति का अधिकार कहते हैं। इन भौतिक वस्तुओं के अधिकार से अधिक महत्त्वपूर्ण अन्य अधिकार हैं। प्रथम, अपना निजी अधिकार मारे न जाने अथवा विकृत न किए जाने, विधि की उचित-प्रक्रिया के बिना जख्मी न किए जाने का अधिकार अर्थात् जीवन का अधिकार, विधि की उचित प्रक्रिया के बिना बंदी न बनाए जाने का अधिकार अर्थात् स्वतंत्रता का अधिकार। दूसरे, प्रतिष्ठा का अधकिार - साथियों की नजर में उपहास न किए जाने अथवा गिर न जाने का अधिकार, ख्याति का अधिकार अर्थात् प्रतिष्ठा, जो दूसरे उसके लिए अनुभव करते हैं, पाने का अधिकार कम नहीं होंगे। तीसरे, शक्तियों और स्वतंत्रताओं के निर्बाध प्रयोग का अधिकार है।[1]

---

1. *अधिकारों, शक्तियों और स्वतंत्रताओं में अंतर है जिसे आम आदमी के लिए अभिप्रेत पुस्तक में संभवतः विशेष रूप से स्पष्ट करने की आवश्यकता है। जब एक व्यक्ति के पास अधिकार होना व्यर्थ है तब उसका अर्थ यह होता है कि किसी दूसरे व्यक्ति का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कर्त्तव्य को पूरा करके अधिकार को वास्तविक बनाए अथवा गलत काम करके या कुछ न करके उस अधिकार को हानि न पहुँचाए।*

   अधिकार और स्वतंत्रता में अंतर है जो कई बार अधिकार समाप्त हो जाता है जब उसमें स्वतंत्रता को समाहित करने के लिए उसका व्यापक अर्थ में प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के तौर पर कहा जाता है कि एक व्यक्ति का अधिकार है, अर्थात् उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की स्वतंत्रता है; लेकिन इसमें यह अर्थ नहीं आता कि एक व्यक्ति को कोई अधकिार नहीं है और उसे दूसरे की स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने की स्वतंत्रता नहीं है। अधिकार और स्वतंत्रता के बीच अंतर इस प्रकार बयान किया जा सकता है; व्यक्ति के अधिकारों का संबंध चीजों से है जो अन्य लोगों को उसके लिए करनी चाहिए। एक व्यक्ति की स्वतंत्रता का संबंध उन चीजों से है जो उसे अपने लिए करनी चाहिएँ है।

   स्वतंत्रताएँ ऐसे कार्य हैं जो एक व्यक्ति बिना कानूनी बाध्यताओं के कर सकता है। एक व्यक्ति की कानूनी स्वतंत्रता का क्षेत्र गतिविधि का वह क्षेत्र है जिसके मामले में कानून कोई हस्तक्षेप नहीं करता।

हर व्यक्ति को बिना किसी हस्तक्षेप के सभी विधिसम्मत कार्य करने और एक व्यक्ति के रूप में उसे प्राप्त सभी विशेषाधिकारों का उपयोग करने का अधिकार है। इस प्रकार का बहुत ही स्पष्ट अधिकार अपनी आजीविका के लिए एक व्यक्ति द्वारा चुने गए व्यवसाय को बिना किसी हस्तक्षेप के चलाने का उसका अधिकार है। इसी शीर्षक के अंतर्गत राजनैतिक राजमार्ग, नदियों और सभी जनोपयोगी सेवाओं को निर्बाध-रूप से प्रयोग करने का हर व्यक्ति का अधिकार आता है। इसी के अंतर्गत हर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह विधि तंत्र का, जिसकी स्थापना हर व्यक्ति की रक्षा करने के लिए की जाती है, उसको हानि पहुँचाने के लिए विद्वेषपूर्ण प्रयोग नहीं करेगा। तीसरे, धोखे से या बल प्रयोग द्वारा हानि से उन्मुक्ति का अधिकार - यह एक ऐसा अधिकार है जिसे किसी वस्तु के नुकसान पहुंचाने वाले स्थानान्तरण की धोखे से स्वीकृति पाने में जबरदस्ती प्रयोग नहीं किया जा सकता। चौथे, एक व्यक्ति के वे अधिकार जिनको सामूहिक तौर पर पारिवारिक अधिकार कहते हैं। इन पारिवारिक अधिकारों के अंतर्गत दाम्पत्य, पैतृक, अभिभावक और प्रभुत्व संबंधी अधिकार आते हैं। दाम्पत्य-अधिकार, दुनिया के विरुद्ध, पति का वह अधिकार है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति बल प्रयोग द्वारा अथवा समझा-बुझाकर उसे उसकी पत्नी के साहचर्य से वंचित नहीं करेगा, यहाँ तक कि उससे अनुचित घनिष्ठ संबंध बिल्कुल स्थापित नहीं करेगा। इसी प्रकार का अधिकार पत्नी को भी दिया जा सकता है और अमरीका के कुछ भागों में इसे मान्यता प्राप्त है। पैतृक-अधिकार में बच्चों के समझदार होने तक बिना किसी हस्तक्षेप के उनकी अभिरक्षा और नियंत्रण तथा उनके श्रम की उपज का ध्यान रखना आते हैं। अभिभावक के अधिकार से माता-पिता का अभिभावक के लोभ के लिए नहीं अपितु बच्चे के लाभ के लिए अभिभावक के रूप में काम करने का अधिकार आता है जिनकी समझदारी की कमी को वह पूरा करता है और जिनकी आवश्यकताओं का वह ध्यान रखता है। प्रभुत्व-संबंधी अधिकार से आश्रित के श्रम का प्रयोग करने का अधिकार अभिप्रेत है। उसकी हत्या करने, उसको कम मूल्यवान बनाने के उद्देश्य से उसे जख्मी करने अथवा उसे बहला-फुसला कर भगा ले जाने से उस अधिकार का उल्लंघन होता है।

जहाँ तक कानून का संबंध है, एक व्यक्ति न होने के कारण एक दास को इनमें से कोई अधिकार प्राप्त नहीं था। कानून की दृष्टि में अछूत एक व्यक्ति है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि उसको ऐसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं हैं जो कानून एक व्यक्ति को देता है। उसे संपत्ति, जीवन, स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और परिवार के अधिकार तथा स्वतंत्र-रूप से अपनी स्वतंत्रता तथा अपनी शक्ति का प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त है। दास की कोई जो भी परिभाषा करे, उसे संपत्ति के एक टुकड़े की संज्ञा दे या यह कहे कि वह एक व्यक्ति नहीं है, ऐसा प्रतीत होता है कि दस अछूत से बदत्तर था।

यदि हम दास की कानूनी-स्थिति पर विचार करें तो उसकी ऐसी ही स्थिति थी। अब हम इस बात पर विचार करें कि रोम साम्राजय और संयुक्त राज्य में दास की वास्तव में क्या स्थिति थी। मैं श्री बैरो के कथन के सारांश को निम्नलिखित रूप में ले रहा हूँ–[1]

"अब तक घरेलू दासता के घृणास्पद पक्ष की रूपरेखा दी गई है। एक दूसरा पहलू भी है। साहित्य से पता चलता है कि कुटुम्ब का बड़ा होना एक सामान्य बात थी। वास्तव में यह अपवाद है। बड़ी संख्या में दास कर्मचारी होते थे ओर ऐसा आमतौर पर रोम में होता था। इटली आसैर निकटस्थ प्रांतों में दिखावे की कम आवश्यकता थी; देहाती बंगलों के बहुत से कर्मचारी जमीन और इसकी उपज से संबंधित उत्पादक कार्य में व्यस्त थे। फोरमैन और दास के बीच पुरानी किस्म के संबंध बने रहे; दास प्रायः साथ मिलकर काम करता था। यह सर्वविदित है कि प्लीनी अपने स्टाफ के प्रति बड़ा दयालु था। प्लीनी ने दंभी होने की भावना से यह नहीं कहा कि उसे अपने दासों के बीमार होने या उनकी मृत्यु होने पर दुःख होता है। उसकी यह स्वयं-सदाचारी होने तथा भावी पीढ़ियों की नजर में दासों का पक्षधर बनने की अभिलाषा नहीं थी जो दासों के बीमार पड़ने और उनकी मृत्यु पर उसके द्वारा लिखे पत्र को पढ़ें कि प्लीनी का कुटुम्ब दासों का गणतंत्र था। दासों के साथ अपने व्यवहार का प्लीनी ने जो ब्यौरा दिया है उसे इतना सामान्य अथवा अवसरिक व्यवहार मान लिया जाता है कि प्रमाण के रूप में इसका कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इस मनोवृत्ति का कोई कारण नहीं है।

दिखावे और वास्तविक साहित्यिक अभिरुचि दोनों की दृष्टि से धनी परिवार अपने घरों में साहित्य और कला में प्रशिक्षण-प्राप्त दास रखते थे। सेनेका के अनुसार कलवीसाइसेस सबिनस के ग्यारह दाास थे जिनको होमर, हेसयोड और नौ कवियों के गीतों का जबानी कविता पाठ सिखाया गया था। एक अशिष्ट मित्र ने कहा, 'किताबों के आवरण सस्ते होंगे।' उत्तर में कहा गया, 'नहीं, जो कुटुम्ब जानता है,मालिक जानता है' लेकिन इस प्रकार के दुर्वचनों के अलावा दासों का शिक्षित होना एक अनिवार्यता रही होगी क्योंकि उस समय मुद्रण की सुविधा उपलब्ध नहीं थी; ..... व्यस्त वकील, कलाप्रेमी, कवि, दार्शनिक और साहित्यिक रुचि के शिक्षित लोगों को नक्लनवीसों, पाठकों और सचिवों की आवश्यकता थी। ऐसे लोग स्वाभाविक रूप से भाषाविद् भी थे; एक पुस्तकालयाध्यक्ष ने, जिसकी 20 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई, अपने बारे में बढ़ा-चढ़ाकर कह रहा था कि वह 'लैटिन में ईश्वर की कृपा से साहित्यकार' था। पुस्तकालय-सहायक अधि कार थे; पुस्तकालयाध्यक्ष सरकारी और गैर-सरकारी पुस्तकालयों में पाए जाते थे ......। साम्राज्य में आशुलिपि का आम प्रयोग होता था और दास नोटरी नियमित रूप से नियुक्त किए जाते थे ......।

1. *रोम साम्राज्य में दासता, पृष्ठ 47-49।*

स्नेटोनियस ने एक विशेष पुस्तक में बहुत से स्वतंत्र व्यक्तियों, साहित्य शास्त्रियों और वैयाकरणों के नाम दिए गए हैं। वेरियस प्लॉक्स आसटस के पोतों का निजी शिक्षक था और उसकी मृत्यु होने पर एक प्रतिमा बनाकर उसका सार्वजनिक रूप से सम्मान किया गया। स्क्रीबोनियस एफ्रोडीसियस एक दास था तथा आबिलियस का शिष्य था और बाद में स्क्रीबेनिया द्वारा आजाद कर दिया गया था। हाईजिनस पेलेटाइन पुस्तकालय का पुस्तकालयाध्यक्ष था, जिसने उसके बाद उसी की दासता से मुक्त जुलियस मौडैस्टस नामक व्यक्ति पुस्तकालयाध्यक्ष बना। हमने सुना है कि एक दास दार्शनिक था जिसके दासता-मुक्त हुए इतिहासकार थे, जिसे अपने मालिक के दोस्तों के दासों और दासता-मुक्त किए हुए वास्तुविदों के साथ बहस करने के लिए प्रेरित किया गया; शिलालेखों में दासता-मुक्त डॉक्टरों के नाम अक्सर मिलते हैं, जिनमें से कुछ विशेषज्ञ थे; उनको बड़े घरों में दासों के रूप में प्रशिक्षित किया गया जैसा कि एक या दो उदाहरणों से विदित होता है; दास्यमुक्ति के बाद वे ऊपर उठे और अपनी उच्च शुल्क के कारण बदनाम हो गए।

"समाज के कुछ वर्गों की माँग थी कि नर्तकियों, संगीतज्ञों, जुए के अड्डों, विभिन्न प्रकार के कलाकारों, कुश्ती लड़ने या व्यायाम करने वालों के प्रशिक्षकों एवं समाचार संवाहकों को सामने आना चाहिए। ये सभी दास लोग थे जिन्हें ख्याति-प्राप्त अध्यापकों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता था।"[1]

आगस्टस का समय व्यापारिक और औद्योगिक विस्तार अवधि की शुरुआत था. ...। दासों को वास्तव में रोजगार पर (पहले कला और शिल्प में) रखा गया, किंतु व्यापार के अचानक बढ़ जाने से उनके लिए रोजगार के अवसर बढ़ गए जो अन्यथा अनावश्यक होते। रोम के लोग मुक्त-रूप और खुले-आम विभिन्न प्रकार के व्यापारिक और औद्योगिक धंधों में व्यस्त हो गए। फिर भी यहां तक कि एजेंट का महत्त्व बढ़ गया क्योंकि व्यापारिक गतिविधियों का काफी विस्तार हो गया और ऐसे एजेंट आवश्यक-तौर पर दास थे। .... इसका कारण यह है कि दासता के बंधन लचीले हैं। उन बंधनों को ढीला करके दासों को यह प्रोत्साहन दिया जा सकता था कि वे धनोपार्जन और स्वतंत्रता की आशा में उन्हें काम दिया जा सकता था, तथा ये बंधन इतने मजबूत हो सकते थे कि वे मालिक को यह गारंटी भी दे सकते थे कि उनके दास के दुराचरण के कारण उसे कोई नुकसान नहीं होगा। दास और मालिक के बीच व्यापार के ठेकों में तीसरे व्यक्ति का होना आम बात थी, और काम इस प्रकार होता था कि निस्संदेह लाभ बहुत होता था। ....दासों को भूमि लगान पर दी जाती थी जैसा कि पहले बताया जा चुका है

---

1. *रोग साम्राज्य में दासता, पृष्ठ 63।*

.... और उद्योग में बिल्कुल यही पद्धति विभिन्न रूप से लागू थी। मालिक पट्टे पर बैंक दे सकता था, या जहाज का इस्तेमाल करने का काम दे सकता था, इसके लिए दास एक निश्चित धनराशि देता था या दास को कमीशन दिया जाता था।"[1]

"एक दास की आमदनी कानूनी तौर पर उसकी अपनी संपत्ति थी। इस बचत का विभिन्न प्रयोजनों के लिए प्रयोग किया जा सकता था। इसमें कोई संदेह नहीं है कि बहुत से मामलों में यह धन, भोजन और सुख-सुविधाओं पर खर्च किया जाता था ....लेकिन इस राशि को यों ही अर्जित की जाने वाली और बेकार में खर्च की जाने वाली मोटी बचतें नहीं समझा जाना चाहिए। जो दास अपने मालिक को उसके काम में मुनाफा कर देता था, उसे खुद भी मुनाफा होता था और उसे यह समझ थी कि किस काम में पैसा लगाने से उसे अधिकतम कमाई हो सकती थी। अक्सर वह अपना पैसा अपने मालिक के काम में लगाता था या उन उद्यमों में लगाता था जिनका इससे कोई संबंध नहीं होता था। वह अपने मालिक के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित कर सकता था, जिससे वह बिल्कुल अलग समझा जाने लगा था, या किसी तीसरे व्यक्ति से इकरारनामा कर सकता था। अपनी संपत्ति और हितों की देखभाल के लिए वह एजेंट भी रख सकता था। अतः उसकी संपत्ति में मात्र जमीन, मकान, दुकान ही नहीं आते थे अपितु उन पर अधिकार और दावे भी आते थे।

"दास कई प्रकार के व्यापारिक काम करते हैं; उनमें से कुछ दुकानदार हैं जो हर प्रकार का खाद्य, रोटी, माँस, नमक, मछली, शराब, सब्जी, सेम फली, औपाइन-बीज, शहद, दही, सुखाया हुआ जानवर के कूल्हे का माँस, बत्तखें और ताजी मछली बेचते हैं और दूसरे कपड़े, चप्पल, जूती, गाऊन और लबादा का लेनदेन करते हैं। रोम में वे अपना व्यापार पास के सर्कस मक्जीमम में या पोर्टीकस ट्रीजमीनस या एस्कीलाइन मार्किट या ग्रेट मार्ट में (कालोनियल पहाड़ी) या सुबुर्रा में करते हैं।....[2]

दास सचिव और दलाल अपने मालिकों के लिए जितना काम करते थे, यह बात पोम्पी में सेसीलियास जकुण्डस के घर में मिली रसीदों से पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है।[3]

राज्य के पास दास होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी; युद्ध अंततः राज्य का मामला था और जो बंदी बनाए जाते थे वे राज्य की संपत्ति होते थे। आश्चर्य की बात यह है कि सरकारी दासों का साम्राज्य में अनोखा प्रयोग किया जाता था और सामाजिक रूप से उनकी स्थिति असाधारण थी.....।"

1. *रोम साम्राज्य में दासता, पृ. 101-102 ।*
2. *वही, पृ. 105 ।*
3. *रोम साम्राज्य में दासता, पृ. 106 ।*

"साम्राज्य के पूर्व सरकारी दास से तात्पर्य राज्य के एक ऐसे दास से था जो अनेक कार्यालयों में नियुक्त था और इस शब्द से निश्चित पेशे और सामाजिक स्थिति का पता चलता था। राज्य के दास, नगर क्षेत्रों के दास और तानाशाह के दास लगभग वही काम करते थे जो अब लोक-सेवाओं की कुछ उच्चतर शाखाओं और सभी निम्न शाखाओं तथा नगर निगमों के कर्मचारियों द्वारा सिर और हाथों से किया जाता है....। (राजकोष के) अधीनस्थ-स्तरों पर लिपिक और वित्तीय अधिकारी काम करते थे जो मुक्त व्यक्ति और दास होते थे। उनके द्वारा किया जाने वाला व्यवसाय अत्यंत विस्तृत रहा होगा। ....टकसाल अध्यक्ष सामंत होता था जो सिक्के बनाने का काम देखता था। ...उसके नीचे एक मुक्त-व्यक्ति होता था जो मुक्त-व्यक्तियों और दासों की सेवा करता था। ...तथापि राज्य सेवा की एक शाखा में दासों को किसी हालत में लम्बे समय तक नहीं रखा जाता था। अत्यंत आवश्यक होने पर अपवाद के रूप में एक या दो बार उनको रखा जाता था। उन्हें सेना में लड़ाई करने की इजाजत नहीं दी जाती थी क्योंकि उन्हें इस लायक नहीं समझा जाता था। निस्संदेह इसके अन्य कारण भी थे; हथियारों का प्रयोग करने का बहुत से दासों को बाकायदा प्रशिक्षण देना खतरनाक माना जाता था। फिर भी यदि दास मात्र लड़ाई की पंक्ति में नियुक्त थे वे नियमित रूप से बड़ी संख्या में नौकर के रूप में इसके पीछे पाए जाते थे और सेना के रसद विभाग तथा परिवहन में काम करते थे। जहाजी बेड़े में भी दास बड़ी संख्या में होते थे।"[1]

रोम के समाज में दास की वास्तविक-स्थिति यही थी। अब हम संयुक्त राज्यों (संयुक्त राज्य अमेरिका) में इस अवधि के दौरान निग्रो की वास्तविक-स्थिति पर विचार करेंगे जहाँ वह कानून की दृष्टि में एक दास था। नीचे कुछ तथ्य दिए जा रहे हैं[2] जो उसकी स्थिति पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं:-

"लफाटे ने स्वयं टिप्पणी की थी कि गोरे और काले नाविकों और सिपाहियों ने क्रांति में बिना कटु विवाद के एक साथ मिलकर युद्ध किया था और एक साथ बैठकर भोजन किया। उत्तरी केरोलीना के ग्रानविल्ले प्राँत में पिंसटन विश्वविद्यालय में शिक्षित हब्शी जॉनचाविस गोरे छात्रों के लिए प्राइवेट स्कूल चलाता था और स्थानीय पुरोहिताश्रम के अंतर्गत एक लाइसेंसिएट था और राज्य के श्वेत लोगों को उपदेश देता था। इसका एक शिष्य उत्तरी केरोलीना का राज्यपाल, दूसरा राज्य अत्यंत प्रभावशाली विग सेनेटर बना। उसके दो शिष्य उत्तरी केरोलीना के मुख्य न्यायाधीश के बेटे थे। राज्य की बृहत्तम सैनिक आमदमी के संस्थापक के पिता उसके स्कूल में पढ़ते थे और उसके घर में रहते थे। ...दास मजदूरों से हर प्रकार का काम करवाया जाता था और जो नीग्रो दास अधिक

---

1. *रोम साम्राज्य में दासता, पृष्ठ 130-140।*
2. *चार्ल्स सी. जॉनसन, नीग्रोस इन अमेरिकन सिविलिजेसन।*

बुद्धिमान होते थे उनको शिल्पकारों के रूप में प्रशिक्षित किया जाता था और उनको पट्टे पर दूसरों को दिया जाता था। दास शिल्पकारों को साधारण लोगों की अपेक्षा दुगनी कमाई होती थी। मालिक शिल्पकारों का अपना स्टाफ होता था। इस प्रणाली के अधिक जटिल हो जाने पर कुछ शिल्पकार मालिक अपने दास शिल्पकारों के लिए किराए पर दास देने लगे। बहुत से शिल्पकार दासों को सामान्य से अधिक आय होती थी जिसे वे बचाकर अपनी आजादी खरीद लेते थे।"

"भगोड़ों के लिए विज्ञापन और बिक्री से इस शिल्प के महत्त्व का पता चलता है। उन्हें गरीब गोरे मजदूरों के बराबर अथवा उनसे अधिक मजदूरी मिलती थी और मालिक के प्रभाव से उनको अच्छे से अच्छा काम मिल जाता था। एथेन्स, जार्जिया में राज-मिस्त्री और बढ़ई के काम का ठेका लेने वाले लोगों से 1838 में याचना की गई कि वे नीग्रो मजदूरों को प्राथमिकता देना बंद कर दें। गोरा आदमी ही इस देश और राज्य का वास्तविक कानूनी, नीति-सम्मत और वैधानिक मालिक है। गोरे लोगों को मालिकाना अधकिार उनके अध्ययन की तारीख से ही मिल जाते थे। कापरनिकस और गैलीलियो ने खोज की कि जमीन गोल है; जिससे दूसरे गोरे व्यक्ति कोलम्बस को संकेत मिला कि पश्चिमी देशों की ओर जल-मार्ग से जमीन की खोज की जा सकती है। अत: गोरे लोगों द्वारा ही इस महाद्वीप की खोज की गई; उन गोरे लोगों द्वारा जिन्हें आप भूखे मरने वाले अपने परिवारों के लिए रोटी या कपड़े के लिए धन नहीं देते, तार्किक रूप से उन्हें काम न देकर बदले में नीग्रो का समर्थन करते हैं।" 1858 में एटलांटा में दो गोरे मिस्त्रियों और मजदूरों ने अन्य भागों में रहने वाले मालिकों की काले दास शिल्पकारों से रक्षा के लिए हस्ताक्षर करके याचिका दी। अगले वर्ष विविध गोरे नागरिक दुखी हो गए। कि नगर की सभा ने दाँतों के एक नीग्रो डॉक्टर को उनके बीच रहने और काम करने दिया है। 'हमारे तथा समुदाय के प्रति न्याय करने के लिए इसे हटा दिया जाना चाहिए। हम एटलांटा के निवासी आपसे न्याय की अपील करते हैं'। 1819 में जार्जिया के रिचमांड प्राँत में स्वतंत्र नीग्रो की जनगणना से पता चला कि बढ़ई, नाई, नाव की डाट लगाने वाले, जीनसाज़, कताई करने वाले, चक्की बनाने वाले, पिस्तौल रखने का चमड़े का डब्बा या बेल्ट बनाने वाले, बुनकर, औजार बनाने वाले, आरा मिल में काम करने वाले और भाप की नाव चलाने वाले नीग्रो थे। एक नीग्रो मोची ने हाथ से बूट बनाए। जिन पर राष्ट्रपति युनरो उद्धृत था। मोंटीसेलो में थॉमस जैफरसन के घर के बढ़िया ढंग से टाइलों से बने फर्श में दासों की कारीगरी पर हैरिट मार्टिन्यू को बड़ा आश्चर्य हुआ था। पुराने बगीचे के बड़े मकान में अभी भी नीग्रो शिल्पकारों के हाथों के विशाल चिह्न मिलते हैं; ये बड़े-बड़े महल बलूत की लकड़ी के बने हैं जिन्हें लकड़ी की कीलों से जोड़ा गया है। नीग्रो महिलाएँ जो कताई और बुनाई में निपुण थीं कारखानों में

काम करती थीं। 1839 में बर्किंघम ने उन्हें एथेन्स, जार्जिया में गोरी लड़कियों के साथ बिना किसी आपत्ति के काम करते हुए देखा।

दक्षिण के नीग्रो कारीगर, दास ओर स्वतंत्र लोग उत्तर के अपने बंधुओं से अच्छे थे। फिलाडेल्फिया में 1856, 1637 नीग्रो कारीगर थे जिनमें से दो तिहाई से कम प्रतिकूल पूर्वाग्रह के कारण अपने शिल्पों का प्रयोग कर सकते थे। आयरलैंड के लोगों का, जिनका उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही अमरीका मेकं आगमन आरंभ हो गया था, नीग्रो दासता की भाँति ही लगभग उन्हीं प्रयोजनों के लिए उत्तर में प्रयोग किया जा रहा था। उनके पक्ष में तर्क देते हुए कहा गया कि आयरलैंड का एक कैथोलिक जिस स्थिति में होता है उससे ऊपर उठने का कभी प्रयास नहीं करता जबकि नीग्रो सफल होने का प्रयास करता है। जब काले दासों का व्यापार हो रहा था तो क्या वृद्ध प्यूटिन ओलीवर क्रामवेल ने आयरलैंड के उन सभी कैथोलिकों की बारबादोस में बिक्री नहीं कर दी थी जो द्रोथेड़ा नरसंहार में नहीं मारे गए। न्यूयॉर्क और पैनसिल्वेनिया में स्वतंत्र और भगोड़े नीग्रो लोगों की इन लोगों के साथ निरंतर लड़ाई होती रहती थी और इस शत्रुता ने न्यूयॉर्क के उपद्रवों में बहुत ही प्रचंड रूप ले लिया था। इन हाइबर्नियन लोगों का बोझा ढोने और मजदूरी के अन्य कार्यों पर नियंत्रण था और वे नीग्रो लोगों के हर प्रस्ताव को अमरीका पर अपनी थोड़ी-सी पकड़ और आजीविका के एक साधनों के लिए खतरा समझते थे।

रोम के दासों और अमरीका के नीग्रो दासों की असल में यह हालत थी। क्या भारत के अछूतों की कोई ऐसी बात है जिसकी रोम के दासों और अमरीका के नीग्रो दासों से तुलना की जा सके? अछूतों और रोम-साम्राज्य के अंतर्गत दासों की हालत में तुलना करने के लिए एक ही अवधि ली जाए तो अनुचित नहीं होगा। लेकिन रोम-साम्राज्य में दासों की हालत की तुलना आज के अछूतों की हालत से की जाए तो मुझे आपत्ति नहीं होगी। यह तुलना एक ओर घटिया और दूसरी ओर बढ़िया से बढ़िया के बीच होगी क्योंकि आज का समय अछूतों के लिए स्वर्णकाल माना जाता है। अछूतों की वास्तविक दशा की तुलना दासों की वास्तविक दशा से कैसे कर सकते हैं? रोम के दासों की तरह कितने अछूत पुस्तकालयाध्यक्ष, साहित्यिक सहायक, आशुलिपिक जैसे व्यवसायों में लगे हैं? रोम में दासों की भाँति भारत में कितने अछूत वक्ता, व्याकरण-वेत्ता, दार्शनिक, निजी-शिक्षक, डॉक्टर और कलाकार हैं? रोम के दासों की तरह कितने अछूत व्यापार, वाणिज्य या कारखानों में लगे हैं? अछूत की स्थिति की तुलना नीग्रो की उस समय की स्थिति से करने पर, जिस समय वह दास था, नहीं कहा जा सकता कि अछूतों की हालत उनकी हालत से बेहतर है। क्या अछूतों के शिल्पकार होने का कोई उदाहरण है? क्या किसी अछूत ने कभी ऐसा कोई विद्यालय खोला है जहाँ ब्राह्मण बच्चे शिक्षा प्राप्त करने हेतु आकर उसके चरणों में बैठे हैं? ऐसी चीज सोची भी क्यों नहीं जा सकती?

लेकिन संयुक्त राज्य अमरीका में ऐसा हुआ है। रोम के दास और अमरीका के नीग्रो की वास्तविक हालत अछूतों की आज की हालत से जानबूझकर इसलिए तुलना की गई है क्योंकि अछूतों के लिए आज का समय स्वर्णकाल माना जाता है। लेकिन अछूतों की यहाँ तक कि आज की स्थिति की तुलना दासों की उस समय की हालत से, जिसे इतिहासकार बर्बर कहते हैं, करें तो भी इनकी हालत अपेक्षाकृत बहुत बुरी है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि अछूतों की हालत दासों की हालत से काफी बदतर रही है। निस्संदेह इसका अर्थ यह है कि मानव की उन्नति के लिए दासता की अपेक्षा अस्पृश्यता अधिक हानिकारक है। इसमें बड़ी विडम्बना है। दास जो कानून की दृष्टि से अछूतों से बदतर थे वास्तव में अछूतों से बेहतर थे और अछूत जो कानून की दृष्टि से दासों से अच्छे थे वास्तव में दासों से बदतर थे। इस विडम्बना का क्या स्पष्टीकरण है? सभी प्रश्नों का एक प्रश्न यह है कि ऐसी क्या चीज है जिसकी सहायता से दासों ने कानूनी तौर पर आजादी पर लगी पाबंदी की जंजीरों को तोड़ दिया और उन्हें फूलने-फलने दिया? ऐसी क्या चीज है जिसने अछूतों को कानून द्वारा दी गई स्वतंत्रता को समाप्त कर दिया और उसकी जीवन की शक्ति को दुर्बल कर दिया तथा उसकी उन्नति को रोक दिया।

इस विडम्बना का स्पष्टीकरण बड़ा सरल है। यह आसानी से समझा जा सकता है यदि कोई कानून एवं जनमत के बीच के सम्बन्ध को ध्यान में रखें। कानून और जनमत दो ऐसी शक्तियाँ हैं जो मनुष्य के आचरण को प्रभावित करती हैं। वे एक-दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया करती हैं। कई बार कानून जनमत से आगे निकल जाता है और उस पर नियंत्रण करता है और उसे उस रास्ते पर चलाता है जिसे वह सही समझता है। कई बार जनमत कानून से आगे निकल जाता है। यह कानून की कठोरता को दुरुस्त करता है ओर उसे नम्र बनाता है। इस तरह के उदाहरण भी हैं कि कानून और जनमत की राय एक दूसरे के विरुद्ध होती है और जनमत दोनों शक्तियों में अधिक ताकतवर होने पर कानून द्वारा निर्धारित की अवहेलना करता है या उसे ठुकरा देता है। चाहे वाणिज्य और उद्योग की सुविधा से उत्पन्न विवशता या दासों का सबसे अधिक और बहुत ही लाभप्रद उपयोग करने की स्वार्थ की भावना या मानवता के विचार इसके कारण रहे हों, रोम या संयुक्त राज्य अमरीका में दास की स्थिति के बारे में जनमत और कानून में कभी मेल नहीं रहा। दन दोनों स्थानों पर दास की दृष्टि में कानूनी व्यक्ति नहीं था। लेकिन दोनों स्थानों पर वह एक मानव के अर्थ में समाज की दृष्टि में एक व्यक्ति रहा। दूसरे शब्दों में कानून ने दास को जो व्यक्तित्व नहीं दिया वह समाज ने उसे दिया। इस दृष्टि से दासता और छुआछूत में बहुत बड़ा अंतर है। अछूतों के मामले में बिल्कुल उल्टा हुआ है। कानून ने अछूतों को जो व्यक्तित्व दिया, वह समाज ने नहीं दिया। दास के मामले में कानूनी-तौर पर उसे एक व्यक्ति के रूप में मान्यता न दिए जाने पर कानून उसे कोई नुकसान नहीं पहुँचा सका क्योंकि समाज ने उसे आवश्यकता से अधिक मान्यता दी। अछूतों के मामले

में कानून उसे एक व्यक्ति के रूप में मान्यता देकर भी उसकी कोई भलाई नहीं कर सका क्योंकि हिन्दू समाज उस मान्यता को समाप्त करने पर तुला हुआ है। दास का एक व्यक्तित्व था जिसका महत्त्व होता था कानून चाहे जो भी रहा हो। लेकिन कानून होने पर भी एक अछूत का कोई व्यक्तित्व नहीं है। यह अंतर आधारभूत है। विडम्बना का मात्र यही स्पष्टीकरण हो सकता है – कानूनी गुलामी होने के बावजूद दास का सामाजिक उत्थान और कानूनी स्वतंत्रता होने पर भी अछूतों की सामाजिक अधोगति।

जिन लोगों ने दासता की निंदा की है वे निस्संदेह इस तथ्य को ध्यान में रखना भूल गए हैं कि दासता, व्यापार, शिल्प अथव कला में अनिवार्यतः एक तरह की प्रशिक्षता थी। स्वतंत्रता की हानि की क्षतिपूर्ति के अभाव में पक्की दासता निश्चित रूप से यह निंदनीय है। लेकिन एक व्यक्ति को दास बनाना और उसे प्रशिक्षित करना स्वाधीन होने पर भी बर्बरता की स्थिति में होने से बेहतर है। दासता का अर्थ सभ्यता के बदले अर्द्ध-बर्बरता प्राप्त करना था, यह एक अत्यधिक अस्पष्ट उपहार था परन्तु बिल्कुल सच था। सभ्य जीवन के लिए सभी अवसरों का पूरी तरह उपयोग निस्संदेह स्वतंत्र वातावरण में ही किया जा सकता था लेकिन दासता एक प्रशिक्षणुता थी, अथवा प्रो. माइरेस के शब्दों में "एक उच्च संस्कृति में एक पदार्पण"।

दासता के बाारे में यह विचार बहुत ही सही है। इस प्रशिक्षण, संस्कृति में इस पदार्पण से निस्संदेह दास को काफी लाभ था। इसी प्रकार अपने दास को प्रशिक्षित करने के लिए, उसे संस्कृति में लेने के लिए उसके मालिक को भारी मूल्य चुकाना पड़ता था। "दासता से पूर्व शिक्षित या प्रशिक्षित दासों की पूर्ति बहुत कम होती होगी। इसका विकल्प यह था कि युवा-अवस्था में ही दासों को घरेलू काम में लगे रहने के साथ ही कारीगरी में प्रशिक्षित किया जाए जैसा कि कुछ हद तक उदाहरण के तौर पर कैटो, दि एल्डर द्वारा साम्राज्य से पहले किया गया था। उसका मालिक तथा उसके कर्मचारी उसे प्रशिक्षण देते थे। वास्तव में अमीर घराने में इस प्रयोजन के लिए विशेष अध्यापक रहते थे। यह प्रशिक्षण कई तरह का होता था जैसे उद्योग, व्यापार, कला और साहित्य"।

प्रश्न यह है कि दास का उच्च संस्कृति में सूत्रपात क्यों किया जाता था और अछूत को इस तरह के सूत्रपात का अवसर क्यों नहीं मिला? प्रश्न बहुत संगत है और मैंने यह इसलिए उठाया है कि इसके उत्तर से इस निष्कर्ष को बल मिलेगा कि अस्पृश्यता दासता से बदतर है और यही कारण है कि दास का अपना एक व्यक्तित्व था लेकिन अछूत का कोई व्यक्तित्व नहीं है।

मालिक दास को प्रशिक्षत करने और उसे श्रम के उत्तम तरीकों एवं संस्कृति में सूत्रपात की शिक्षा देने के लिए इतना कष्ट इसलिए उठाता था क्योंकि उसे इससे लाभ होता था। एक प्रशिक्षित दास एक वस्तु के रूप में एक अप्रशिक्षित दास से अधिक

मूल्यवान था। उसे यदि बेचा जाता तो अधिक पैसे मिलते और यदि उसे भाड़े पर दिया जाता तो अधिक मजदूरी मिलती। अतः अपने दास को प्रशिक्षित करना मालिक के लिए पूँजीनिवेश था। लेकिन दास के उत्थान और अछूत की अवनति का यही कारण नहीं है। मान लीजिए कि रोम के समाज को दास के हाथों से सब्जी, दूध, मक्खन, पानी या शराब खरीदने पर आपत्ति थी, मान लीजिए कि रोम के समाज को दास के द्वारा उकनो छूने पर, उनको घरों में प्रवेश करने पर, कारों आदि में उनके साथ यात्रा करने पर आपत्ति थी तो क्या मालिक अपने दास को प्रशिक्षित कर पाता, उसे अर्द्ध-बर्बरता की स्थिति से निकालकर उसे सु-संस्कृत मानव बना पाता? बिल्कुल नहीं। मालिक दास को इसलिए प्रशिक्षित कर सका और उसका उत्थान कर सका कि वह उसे अछूत नहीं समझता था। अतः हम पुनः उसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दास इसलिए सुरक्षित रह सका क्योंकि समाज उसके व्यक्तित्व को मान्यता देता था और अछूत का इसलिए विनाश हुआ है कि हिन्दू समाज उसके व्यक्तित्व को मान्यता नहीं देता था, उसे इन्सानों के साथ मिलने-जुलने और उनके साथ लेन-देन करने के योग्य नहीं समझता था।

रोम में क्योंकि एक दास था, इसलिए वह एक इंसान से कम नहीं था, वह इंसानों से मेल-जोल रखने योग्य था हालाँकि वह बंधन में था इसकी पुष्टि दासों के प्रति रोम के धर्म की प्रवृत्ति से हो जाती है। कहा गया है किः-

"रोम का धर्म कभी दास-विरोधी नहीं रहा। इसने उसके लिए मंदिरो के द्वार कभी बंद नहीं किए; इसने अपने त्यौहारों से उनको निकाला नहीं। यदि दासों को कतिपय समारोहों से अलग रखा गया, तो स्वतंत्र पुरुषों और महिलाओं के मामले में भी यही बात कही जा सकती है जिनको बोनो दीया, बैस्टा और सैरेस के धार्मिक-अनुष्ठानों में, महिलाओं को आरा मैक्नीमा में हरकुलीस के धार्मिक-अनुष्ठानों में शामिल नहीं किया गया। जिन दिनों रोम के पुराने देवताओं की कुछ गिनती थी, उस समय दास को अनौपचारिक रूप से परिवार का सदस्य माना जाने लगा था और वह यह समझ सकता था कि उसे परिवार के देवताओं की सुरक्षा प्राप्त है। ....आगस्टस ने आदेश दिया कि स्वतंत्र की गई स्त्रियाँ बेस्टा की पुजारिन बनने के लिए पात्र होनी चाहिए। कानून में इस बात पर बल दिया गया कि एक दास की कब्र को पवित्र माना जाए और रोम की पौराणिक परंपरा में उसकी आत्मा के लिए किसी विशेष स्वर्ग या खास नरक का प्रावधान नहीं था। नवयुवक इस बात को मानता है कि दास और उसके मालिक के शरीर और आत्मा में कोई अंतर नहीं था......।"

कानून में दास

एक व्यक्ति के तौर पर वह बेदाग था। रोम में एक दास और समाज के अन्य लोगों

में सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से कोई अंतर नहीं था। बाहरी रूप-रंग की दृष्टि से उसमें और एक आजाद व्यक्ति में कोई अंतर नहीं था; उसके रंग या कपड़ों से उसकी स्थिति का पता नहीं चलता था; वह वही खेल देखता था जो आजाद लोग देखते थे, वह नगरपालिका के कस्बों के जीवन में हाथ बँटाता था, राज्य-सेवा में नियुक्त था, सभी स्वतंत्र लोगों की तरह व्यापार और वाणिज्य का काम करता था। एक व्यक्ति के लिए बाहरी चीजों में समानता प्रायः कानून के सभी अधिकारों की वास्तविक पहचान से अधिक महत्त्वपूर्ण होती है। एक दास और स्वतंत्र आदमी के बीच प्रायः कोई सामाजिक बाधा नहीं थी। एक दास और मुक्त किए हुए दास के बीच विवाह एक आम बात थी। दास होने से कोई व्यक्ति समाज में कलंक का टीका नहीं बन जाता था। वह स्पर्शग्राह्य और आदरणीय था।

यह दिखाने के लिए बहुत कुछ कहा जा चुका है कि छुआछूत दासता से बदतर है। इसकी तुलना केवल मध्य-युग के यहूदियों से ही की जा सकती है। यहूदियों की निम्न-स्थिति कुछ हद तक अछूतों की हालत से मिलती-जुलती है। लेकिन इसके बारे में यह कहा जा सकता है। पहले तो यह कि यहूदियों के साथ जिस आधार पर भेदभाव किया जाता था वह बिल्कुल बोधगम्य था यद्यपि उचित नहीं था। यह धर्म के मामले में यहूदियों की कट्टरता पर आधारित था। यहूदी गैर-यहूदियों के धर्म को स्वीकार नहीं करता था और उसकी इसी कट्टरता के कारण उसे दंडित होना पड़ा। उसने जैसे ही अपनी कट्टरता को त्याग दिया वह अपनी निर्योग्यताओं से मुक्त हो गया। लेकिन अछूत के मामले में ऐसी बात नहीं है। उसकी निर्योग्यताओं का कारण यह नहीं है कि वह प्रोटेस्टेट या रूढ़िवादी नहीं है। यहूदियों की इन निर्योग्यताओं के बारे में दूसरी बात यह कही जाती है कि वे चाहते थे कि उनका व्यक्तित्व गैर-यहूदियों में पूरी तरह आत्मसात हो जाए। यह बात विचित्र प्रतीत हो सकती है लेकिन तथ्यों के आधार पर यह बात सिद्ध हो जाती है। इस संदर्भ में इतिहास में उद्धृत दो घटनाओं का उल्लेख किया जा सकता है जो यहूदियों की प्रवृत्ति का प्रतीक हैं। पहली घटना का नेपोलियन के साम्राज्य से संबंध है। जब फ्रांस की राष्ट्रीय विधानसभा यहूदियों के लिए मानवाधिकारों की घोषणा करने के लिए सहमत हो गई तो आलसेस के गिण्ड व्यापारियों और धार्मिक प्रतिक्रियावादियों ने यहूदियों का प्रश्न पुनः उठाया। नेपोलियन ने यह प्रश्न विचार के लिए यहूदियों को ही देने का निश्चय किया।

"उसने जर्मनी, फ्रांस और इटली के श्रेष्ठ यहूदी व्यक्तियों की एक सभा इस बात का पता लगाने के लिए बुलाई कि क्या यहूदी धर्म के सिद्धान्त नागरिकता की आवश्यकताओं के अनुरूप हैं क्योंकि वह यहूदी समुदाय को प्रमुख जनसमुदाय में मिला देना चाहता था। 111 प्रतिनिधियों की सभा की बैठक 25 जुलाई, 1806 को पेरिस के टाउन हॉल में हुई जिसे मुख्य रूप से यहूदियों की देशभक्ति की संभावना, यहूदियों और गैर-यहूदियों

के बीच विवाह की छूट, एवं सूदखोरी की वैधता से संबंधित बारह प्रश्नों के उत्तरों पर विचार करना था। सभा की घोषणाओं से नेपोलियन इतना प्रसन्न हुआ कि उसने इन घोषणाओं को विधानसभा में कानूनी आदेशों का रूप देने के लिए जेरूसलम की प्राचीन महासभा की तरह यहूदियों की एक महासभा बुलाई। यहूदियों की यह महासभा जिसमें फ्रांस, जर्मनी, हॉलैंड और इटली के प्रतिनिधि थे, 9 फरवरी 1807 में, स्टेसबर्ग के राबी सिन्हेम की अध्यक्षता में समाप्त हुई, और उसने एक प्रकार का अधिकार-पत्र अपनाया जिसमें यहूदियों को प्रेरित किया गया कि वे फ्रांस को अपनी पितृ-भूमि समझें, इसके नागरिकों को अपना भाई समझें और उसकी भाषा बोलें, एवं इस अधिकार-पत्र में इस बात पर भी बल दिया गया कि यहूदियों और ईसाइयों के बीच विवाह होने दिए जाएँ, इसके साथ ही यह घोषणा भी की गई कि यहूदी धर्म इनकी अनुमति नहीं दे सकता।" इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यहूदियों ने यहूदियों और गैर-यहूदियों के बीच विवाह की इजाजत नहीं दी। वे केवल उन्हें बर्दाश्त करने के लिए सहमत हुए। दूसरे उदाहरण का संबंध इस घटना से है जो 1795 में बटाविया गणतंत्र की स्थापना होने पर घटित हुई। यहूदी समुदाय के अधिक ताकतवर सदस्यों ने दबाव डाला कि उन्हें जिन कठिनाइयों में काम करना पड़ता है उन्हें दूर किया जाए। परन्तु यह बड़ी विचित्र बात है कि प्रगतिशील यहूदियों द्वारा नागरिकता के पूरे अधिकारों की माँग का एम्स्टरडम समुदाय के नेताओं द्वारा पहले विरोध किया गया, उन्हें डर था कि नागरिक समानता यहूदी धर्म के कट्टरपन के प्रतिकूल होगा और उन्होंने घोषणा की उनके धर्म के लोगों ने अपने धार्मिक विश्वास को मानते हुए अपने नागरिक अधिकारों का त्याग कर दिया था। इससे पता चलता है कि यहूदियों ने समाज के सदस्य बनकर रहने की बजाए, अजनबी बनकर रहना बेहतर समझा। 'अपरिवर्तनीय लोग' होने के कारण उन्हें अलग रखा गया और सजा दी गई। लेकिन अछूतों के मामले में ऐसी बात नहीं है एक भिन्न दृष्टि से वे भी अपरिवर्तनीय लोग होने के कारण उन्हें अलग रखा गया और उन्हें सजा दी गई। लेकिन अछूतों के मामले में ऐसी बात नहीं है। एक भिन्न दृष्टि से वे भी 'अपरिवर्तनीय लोग' हैं जो अन्य लोगों से अलग हैं। लेकिन वे अपनी इच्छा से अलग नहीं हुए हैं। उनको दंड इसलिए नहीं दिया गया कि वे मिल-जुलकर रहना नहीं चाहते। उनको दंड इसलिए दिया गया कि वे मिल-जुल कर रहना चाहते हैं।

छुआछूत दासता से बदतर है क्योंकि दास का समाज में एक व्यक्तित्व है यह बात अच्छी तरह स्पष्ट कर दी गई है। लेकिन छुआछूत के दासता से बदतर होने का केवल यही एक कारण नहीं है। इसके अन्य कारण भी हैं जो प्रत्यक्ष तो नहीं हैं लेकिन फिर भी वास्तविक हैं।

इनमें से जो सबसे कम प्रत्यक्ष कारण है उनका उल्लेख पहले किया जा सकता है। यदि दासता ने दास को किसी तरह की आजादी नहीं दी, तो उसके मालिक का यह

कर्त्तव्य था कि वह उसका भरण-पोषण और उसकी रक्षा करेगा। दास को अपने लिए खाने, कपड़े या मकान की चिंता नहीं रहती थी। इन चीजों का प्रबंध करना उसके मालिक की जिम्मेदारी थी। निस्संदेह, दास मालिक के लिए बोझ नहीं होता था क्योंकि वह अपेक्षाकृत अधिक कमाता था। लेकिन हर स्वतंत्र व्यक्ति खाने-पीने और रहने की व्यवस्था नहीं कर सकता था यह बात सभी कमा कर खाने वाले समझते हैं। जो मेहनत करने के लिए तत्पर रहते हैं उनको भी हमेशा काम नहीं मिलता लेकिन एक मजदूर इस नियम से नहीं बच सकता जिसके अनुसार यदि वह काम नहीं करेगा तो उसे रोटी नहीं मिलेगी। काम नहीं तो रोटी नहीं का यह नियम, व्यापार में उतार-चढ़ाव, तेजी और मंदी आदि ऐसी चीजें हैं जिनका सभी स्वतंत्र मजदूरों को सामना करना पड़ता है। लेकिन दास पर इन चीजों का प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वह इन बातों से आजाद होता है। तेजी हो या मंदी उसे वही खाना - संभावतः मालिक जैसा ही खाना मिलता है। छुआछूत दासता से बदतर है क्योंकि दास को आजीविका की जो सुरक्षा उपलब्ध है वह सुरक्षा अछूत को उपलब्ध नहीं है। अछूत को भोजन, मकान और कपड़ा देने के लिए कोई जिम्मेवार नहीं है। इस दृष्टि से छुआछूत दासता से न केवल बदतर है बल्कि यह उसकी तुलना में सकारात्मक रूप से पीड़ादायक है। दासता के मामले में दास के लिए काम ढूंढना मालिक की जिम्मेदारी होती है। स्वतंत्र श्रम-प्रणाली में काम पाने के लिए कारीगरों को एक-दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा करनी पड़ती है। काम के लिए इस छीना-झपटी में एक अछूत के साथ कितना न्याय हो सकता है? संक्षेप में, इस होड़ में हवा हमेशा उसके प्रतिकूल जाती है, उस पर लगे सामाजिक कलंक के कारण उसे सबसे अंत में काम मिलता है और सबसे पहले निकाला जाता है। दासता की तुलना में छुआछूत क्रूर है क्योंकि छुआछूत के मामले में आजीविका का कोई साधन न होने पर भी एक अछूत को अपना निर्वाह स्वयं करना पड़ता है। एक और दृष्टि से भी छुआछूत दासता से बदतर है। दास संपत्ति था और इसलिए एक स्वतंत्र व्यक्ति की तुलना में उसे एक लाभ था। बहुत उपयोगी होने के कारण मालिक अपने हित में दास के स्वास्थ्य और सुख-सुविधा का काफी ध्यान रखता था। रोम में दासों को कभी भी दलदल व मलेरिया वाली भूमि पर काम में नहीं लगाया जाता था। ऐसे स्थानों पर केवल स्वतंत्र लोगों को काम दिया जाता था। काटो ने रोम के किसानों को दलदल व मलेरिया की भूमि पर दासों को काम न देने की सलाह दी है। यह बात विचित्र लगती है। लेकिन इस पर थोड़ा विचार करने से पता चलेगा कि यह बिल्कुल स्वभाविक था। दास एक उपयोगी संपत्ति था और इस प्रकार एक समझदार आदमी जानता था कि उसे मलेरिया न होने में उसका हित है। एक स्वतंत्र व्यक्ति का इतना ध्यान नहीं रखा जाता है क्योंकि वह एक उपयोगी संपत्ति नहीं है। इस विचारधारा से दास को बहुत लाभ हुआ। उसकी जितनी देखभाल होती थी उतनी किसी की नहीं होती थी। अछूतों का इस तरह का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है। उसकी उपेक्षा की जाती है और भूख से मरने दिया जाता है।

छुआछूत और दासता के बीच दूसरा या सही मामलों में तीसरा अन्तर यह है कि दासता कभी भी बन्धनात्मक अथवा आवश्यक नहीं रही थी। किन्तु छुआछूत बंधन या आवश्यकता है। किसी भी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति को अपना दास बनाने की अनुमति है। परन्तु यदि वह किसी को दास नहीं बनाना चाहता तो उस पर कोई बन्धन या मजबूरी नहीं है। इसके विपरीत किसी को अछूत मानना एक हिन्दू की मजबूरी है। यह उसके लिए बाध्यता है जिसे उसे मानना होगा, भले ही वह उसे न चाहता हो।

---समाप्त---1.4.16

☎ 23320571
23320589
23320576
FAX : 23320582

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
DR. AMBEDKAR FOUNDATION

सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
MINISTRY OF SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
भारत सरकार
GOVERNMENT OF INDIA

निदेशक
DIRECTOR

15, जनपथ,
15, JANPATH
नई दिल्ली - 110001
NEW DELHI-110001

दिनांक – 31.10.2019

रियायत नीति (Discount Policy)

सक्षम प्राधिकारी द्वारा यह निर्णय लिया गया है कि पहले के नियमों के अनुसार CWBA वॉल्यूम के संबंध में रियायत नीति (Discount Policy) जारी रखें। तदनुसार, CWBA इंग्लिश वॉल्यूम (डिलक्स संस्करण–हार्ड बाउंड) के एक पूर्ण सेट की कीमत और CWBA हिंदी वॉल्यूम (लोकप्रिय संस्करण–पेपर बाउंड) के एक पूरे सेट की कीमत निम्नानुसार होगी :

क्र.सं.	सीडब्ल्यूबीए सेट	रियायती मूल्य प्रति सेट
	अंग्रेजी सेट (डिलक्स संस्करण) (वॉल्यूम 1 से वॉल्यूम 17)– 20 पुस्तकें।	रू 2,250/–
	हिंदी सेट (लोकप्रिय संस्करण) (खंड 1 से खंड 40 तक)– 40 पुस्तकें।	रू 1073/–

2. एक से अधिक सेट के खरीदारों को सेट की मूल लागत (Original Rates) यानी रू 3,000/–(अंग्रेजी के लिए) और रू 1,430/–(हिंदी के लिए) पर छूट मिलेगी जो कि निम्नानुसार है।

क्र.सं.	विशेष	मूल लागत पर छूट का प्रतिशत
	रू 1000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	10%
	रू 1001–10,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	25%
	रू 10,001–50,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	33.3%
	रू 50,001–2,00,000/– रुपये तक की पुस्तकों की खरीद पर	40%
	रू 2,00,000/– से ऊपर की पुस्तकों की खरीद पर	45%

3. इच्छुक खरीदार प्रतिष्ठान की वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in पर विवरण के लिए जा सकते हैं। संबंधित CWBA अधिकारी / पीआरओ को स्पष्टीकरण के लिए दूरभाष नंबर 011–23320588, पर कार्य दिवसों में पूर्वाह्न 11:30 बजे से शाम 5:30 बजे तक संपर्क किया जा सकता है।

(देबेन्द्र प्रसाद माझी)
निदेशक, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान